विश्वचेतना के मनस्वी सन्त :
मुनि श्री सुशील कुमार

•

प्रेरक .

श्री सुभाग मुनि जी महाराज

लेखक

मुनि सुमन्त भद्र

•

अहिंसा प्रकाशन
अहिंसा विहार
सी-ब्लाक, डिफेन्स कालोनी,
नई दिल्ली

समर्पण

परमश्रद्धेय मुनि श्री छोटेलाल जी महाराज

को

उन्हीं के यशस्वी शिष्य का जीवन-वृत्त

सविनय, सप्रणाम

मुनि श्री

श्री सुभाग मुनि जी म० जिनकी प्रेरणा से पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका

अनुक्रम

१	आभास	१
२	भविष्य का कल्पतरु	४
३	जन्म एव शैशव	९
४	दीक्षा	१६
५	तरुणाई के सपने	१८
६	महत्सकल्प	२७
७.	सादडी सम्मेलन	३०
८	समन्वय की ओर	४५
९	नई उद्भावनाये	५०
१०	विश्व-धर्म सम्मेलन	५४
११	प्राणिरक्षा और अभयदान	८१
१२	गोरक्षा आन्दोलन	८४
१३	नये-नये धर्म, नये-नये रूप	९१
१४	एशियाई धर्मों का मिलन	९६
१५	कल्याण-मार्ग धर्मयोग .	९९
१६	धार्मिक सम्प्रदायो में परम ऐक्य ...	१०१

अनुशंसा

मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज भारत के ख्यातनामा सन्त हैं। मानव-जाति के अभ्युत्थान के लिए समर्पित उनका यशस्वी जीवन जन-जन के लिए अभिनन्दनीय है। अपने जीवन की अनेकविध उपलब्धियो को उन्होने जन-कल्याण के लिए जिस सहृदयता, नि स्पृहता और मनस्विता से अर्पित कर दिया है उसका उदाहरण समय के आयाम मे अविस्मरणीय प्रतिमान है। आध्यात्मिक पृष्ठभूमि मे जब कभी भूमा सन्त और सृजनशील स्वप्नद्रष्टा का इतिहास निर्मित होगा, मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज का नाम स्वर्णाक्षरो मे लिखा जायेगा। कितना आश्चर्य होता है उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व पर जब हम देखते हैं कि सामान्य शिक्षा-दीक्षा एव सामाजिक परिवेश मे निर्मित एक व्यक्ति विश्वचेतना का प्रतीक बन गया और जीवन तथा जगत् के वरेण्य मूल्यो की स्थापना मे उसे सर्वाधिक सफलता और ख्याति मिली।

बुद्ध, महावीर, राम, कृष्ण, गुरुनानक, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहस, विवेकानन्द और गाधी की अविच्छिन्न परम्परा के इतस्तत. अनेकानेक अवतारो और सन्त-महात्माओ ने भारतीय सस्कृति की चिन्तन-परम्परा को युगानुकूल भाव-सामग्री दी और उस चिरन्तन भावधारा को अजस्र एव अक्षुण्ण रखा। इस सन्दर्भ मे जब हम मुनि श्री सुशील कुमार जी के कृतित्व एव विचार-सरणि का मूल्याकन करते है तो पाते है कि बीसवी शताब्दी मे सास्कृतिक तत्त्वो के निर्माण मे उनकी भूमिका विश्वधर्म की है। शिक्षा, राजनीति, धर्मनीति और अध्यात्म सबमे उनकी गहरी पैठ है और अपने सूक्ष्म दृष्टि-बिन्दु और विश्लेषण की प्रतिभा के कारण उसे विस्तृत सदर्भ मे उन्होने सवारा है।

विज्ञान और तकनीकी युग की अहिंसा-दृष्टि को सरचना मे उनका मनोशिल्प सार्वभौम रूप से स्वीकृत एव मान्यताप्राप्त है। उनके आचार-विचार मे अहिसा केवल बुद्धि-विलास या तर्क-वितर्क न होकर जीवन्त आचार-पद्धति और जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है। अहिंसक समाज की रचना की दिशा मे उनके अभिनव प्रयोग भारत की आध्यात्मिक युवा पीढी की सरचना की आधारशिला है। धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ग और वर्ण की विनाशिनी सकीर्णताओ के परिवृत्त को तोडकर विश्व-धर्म एव विश्व-परिवार की परिकल्पना को मूर्तस्वरूप प्रदान करने मे वे अहर्निश रत है। उनके महत्सकल्प और अध्यवसाय का ही परिणाम है कि उनके निर्देशन मे अनेक सस्थाए चल रही हैं और आज की तनावपूर्ण एव कुण्ठाग्रस्त युवापीढी के लिए आशा एव विश्वास के अनुरूप अभिनव मानदण्डो का सृजन कर रही हैं।

मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज का जीवन-वृत्त सहजीवन और सह-

चिन्तन की ओर पाठको को प्रेरित करेगा, इस अभिलाषा से 'विश्वचेतना के मनस्वी सन्त' को जन-जन के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुस्तक के लेखन से लेकर मुद्रण तक मेरे आराध्य गुरुवर्य श्री सुभाग मुनिजी की प्रेरणा एव आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहे हैं। इतने नि स्पृह और जागरूक सन्त की छत्रछाया मे रहकर यह कार्य जितनी सुगमता से मैं कर पाया उसके लिए किन शब्दो मे उनका आभार व्यक्त करूँ। जब-जब मुझे प्रमाद अथवा विस्मृति ने आविष्ट किया, उनके स्नेहसिक्त उद्बोधन ने मेरी तन्द्रा भग की और मैं नित नयी स्फूर्ति से इस कार्य का सम्पादन करता रहा। दूसरो का नैतिक शोषण कर अपने यश-गौरव की उद्घोषणा करने वाले महत्त्वाकाक्षी सन्त तो बहुत मिल जायेंगे किन्तु अनाम रहकर दूसरो के निर्माण मे अपनी समस्त उपलब्धियो का दान करने वाले अति न्यून होगे। आज मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज जो कुछ हैं उसमे श्री सुभाग मुनि जी महाराज का बहुत बडा योगदान है। जो भी कोई स्पृहणीय वस्तु या अलकरण उन्हे मिला, उन्होने मुनि श्री सुशील कुमार जी के श्रीचरणो मे अर्पित कर दिया और स्वय अवढरदानी अनगार की तरह बिना किसी ऐहिक भावना के तटस्थ-भाव से जीवन-यापन कर रहे हैं। इस कृतित्व का समस्त श्रेय उन्ही को है।

पितामह गुरुदेव परमश्रद्धेय जैन-धर्मभूषण स्थविरपदविभूषित मुनि श्री छोटे लाल जी महाराज के वात्सल्य एव स्नेह ने मेरे मनोबल मे वृद्धि की और विभिन्न स्थलो पर अपने रचनात्मक मार्ग-दर्शन के द्वारा पुस्तक निर्माण मे उन्होने मुझे गतिशील बनाया। उन्ही पूज्यचरण के करकमलो मे इस कृति को समर्पित करते हुए मैं अद्भुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। प्रमादवश पुस्तक मे निहित त्रुटियो के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

इस पुस्तक के निर्माण मे मेरे अग्रज सन्त मुनि श्री अमरेन्द्र कुमार जी महाराज, श्री अशोक मुनि जी महाराज, मुनि श्री धर्मकीर्ति जी महाराज, श्री मदनलाल जैन, आदर्श प्रेस के सचालक श्री छुट्टनलाल गुप्त, कुमारी मधु जैन, श्रीमती विमल प्रकाश जैन श्री सुरेन्द्र मोहन बसल आदि का स्नेहपूर्ण सहयोग मुझे समय-समय पर मिलता रहा है। श्री अरिदमन जैन, स्वर्गीय पृथ्वीराज जैन के सुपुत्रो श्री पुरुषोत्तम जैन, श्री महेन्द्र कुमार जैन, श्री चमन लाल जैन, श्री डिप्टीमल—जजमल जैन आदि से परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से मिले प्रत्येक प्रकार के सहयोग के लिए मैं उनके प्रति विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ।

—मुनि सुमन्त भद्र

जैन भवन
१२, शहीद भगत सिंह मार्ग,
नई दिल्ली-१
रक्षाबन्धन, ३ अगस्त १९७४

आभास

आज जिस बहुमुखी व्यक्तित्व को हम मुनि श्री सुशील कुमार के नाम से जानते हैं, वह अनेक व्यक्तित्वो का समन्वित रूप है जिसमे उर्मिल सागर का गाम्भीर्य, अशुमाली का तेज, वैश्वानर की दीप्ति, सुधाकर की सौम्यता, हिमाद्रि का आचल्य, मरुत् का उद्दाम वेग, वसुन्धरा की क्षमा और ध्रुव का धैर्य है, उसकी तितिक्षा और अभीप्सा मे नचिकेता और प्रज्ञा मे शुकदेव का व्यक्तित्व झाकता है । कितना विलक्षण होगा वह व्यक्ति जो दरिद्र-नारायण की झोपडी से राजमहल तक शान्ति और स्वस्ति का अलख जगाता चलता है ! कितनी गहराई होगी उसकी आखो मे जो वात्सल्य और करुणा की जगपावनी विमल धारा का उत्स है ! विश्वास नही होता होगा लोगों को कि एक अनगार सन्यासी जिसके पाँव नगे, जिसके सिर पर कोई छत्र नही, कुटुम्ब के नाम पर एक कृश काया, किन्तु हृदय में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदात्त भावना, किस प्रकार जनता का हृदय-सम्राट् बना, अपनी धुन मे चल रहा है । बसन्त आता है अलस-उन्मत्त और चचल, पतझर आता है—उदास—कुण्ठित और श्रीहीन, ग्रीष्म का आतप और शीत के तुषार किन्तु सबसे निरपेक्ष सदाबहार यह मनस्वी कौन है जिसकी आँखे शून्य की विभुता से साक्षात् करती हुई किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित हो गयी हैं ! अवश्य यह कोई महायोगी होगा जो नश्वर ससार की भगुरता की उपेक्षा करता हुआ आत्मकैवल्य की आभा से सम्मोहित हो चुका है । नही, ऐसा नही हो सकता वह तो हृदय की भग्न तन्त्री मे एक दीर्घ आलाप भर कर झकृत करता जा रहा है परिवेश को ! सम्भवत अमृत बाँटने की अभिलाषा उसके पांव धरती पर टिकने नही देती, वह चल रहा है गहरे-उथले, उबड-खाबड विविध व्यवधानो की बिना परवाह किये !

सघन आम्र कुजो मे जब कोकिल का मर्मभेदी गीतस्वर मुखरित होता है, नवोढा कलियो का शृगार अलि-गुजन को मौन निमत्रण देता है, पवन-बाँसुरी का मादक-स्वर केलि-सरोवर की अभिराम जलराशि को स्पन्दित करता है, सौरभ के भार से झुका हुआ पवन-

दोल अवश हो जाता है, तरुण तपस्वी की कुंचित केशराशि विभा के तिमिरांकित प्रमाद को अपदस्थ कर मदन-विजयिनी की सज्ञा से अभिहित होती है। उसकी काव्यमयी वाणी मे नवयुग के अभिनव प्रत्यूष की अमर भैरवी निनादित होती है जिसे सुनकर यौवन उद्बुद्ध होता है, सुप्त आत्मगौरव जागृत होता है और तमस् के अभेद्य आवरण को चीरती हुई असख्य किरणें युग को अभिनव आलोक से पूर देती हैं। मौन और आहत स्वरो की रागिनी अगडाई लेती है और बज उठती है प्रयाण की भेरी। ऐसा सम्मोहन, ऐसा उद्बोधन, ऐसी प्रेरणा—क्या किसी एक ही व्यक्तित्व से नि सृत हो रही है! सगीत-योगी तानसेन ने जब दीप मलार गाये थे, लक्ष-लक्ष मृण्मय दीपो से अग्निशिखा प्रज्वलित हो उठी और जब मेघ-मलार का समय आया, तृषिता धरित्री को तप्त करने के लिए मेघराशि आकाश-मण्डल से उतर आयी थी किन्तु जो एक साथ दीप और मेघ मलार लेकर अवतरित हुआ हो उसके प्रभा-मण्डल की कल्पना की जा सकती है?

अनेक अनुमान, अनेक सम्मभावनायें, असख्य प्रतिमान और अमित प्रतीको का पूजीभूत रूप-असख्य दीपो की एक शलाका, असख्य पुष्पो की एक सुरभिराशि, अनेक तीर्थों का एक सगम, अनेक मेरुओ का एक सुमेरु, अनेक मातृकाओ मे एक प्रणव—क्या वही एक मे अनेक और अनेक मे एक है—मुनि सुशीलकुमार।

अनादि काल से चली आ रही भारत की सास्कृतिक परम्परा मे सतो का योगदान अविस्मरणीय है। ऋषभदेव से लेकर व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, बुद्ध, महावीर, समर्थ गुरु रामदास, त्यागराज, तिरुवल्लुवर, एकनाथ, ज्ञानेश्वर, जगद्गुरु शकराचार्य, पीर निजामुद्दीन, कबीर, गुरुनानक, चैतन्य महाप्रभ, तुलसी, मीरा, रामकृष्ण परमहस, विवेकानन्द, रमण महर्षि तथा श्री अरविन्द और महात्मा गाधी जैसे अनेक ऋषि-मुनियो और मनीषी द्रष्टाओ ने भारतीय सस्कृति की गरिमा को काल के विभिन्न आयामो मे अक्षुण्ण रखा है। हिमालय से कन्याकुमारी और कच्छ से बगाल की खाडी तक सत्य, शिव, सुन्दरम् का जो अनाहत सगीत युगो से मुखरित हो रहा है उसमे इन्ही सन्तो की आत्मा ध्वनित हो रही है। यदि हम भारतीय इतिहास को एक अविच्छिन्न सन्त-परम्परा की की समुज्जवल गाथा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

भारत केवल नदियो, पर्वतो, मैदानो और वनो से घिरा एक भूखण्ड ही नही है, उसका अपना भावात्मक स्वरूप भी है। जहाँ की नदियो के कल-कल मे दया, क्षमा करुणा और आर्जव का सगीत मुखरित हो रहा है, जहाँ के वनो मे वेदमन्त्रो की ऋचाए और सन्तो की मधुरामृत वाणी गूज रही है, जहाँ की शस्यश्यामला धरित्री के अचल मे जीवनदायी स्तन्य और वात्सल्य है, वही देवभूमि है भारत जिसके लिए कहा गया है—

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत-भूमि भागे
स्वर्गापवर्गास्पद-हेतु-भूते
भवन्ति भूय पुरुषा. सुरत्वात्

प्रकृति का केलिगृह भारत जहाँ गिरिराज हिमालय के हिमाच्छादित उत्तुग शृग, गगा, यमुना, सरस्वती, रावी, चिनाव, झेलम, सतलज, व्यास, कृष्णा, कावेरी आदि नदियो का

कल-कल संगीत, बसन्त के मादक वातावरण मे आम्रमजरी पर पचम स्वर मे कूकती कोकिला का कण्ठ-स्वर, विविध वर्णी पुष्पो के गुच्छ पर रसलोलुप भौंरो का गुजन, अपने कोमल आघात से हीरे के वज्र-हृदय को विदीर्ण कर देने वाला शिरीष कुसुम, सूर्य और चन्द्रमा को दर्पण दिखाने वाली अगनायें मृगी और मृगलोचनी – क्या ये सब मिलकर स्वर्ग की सुषमा को पृथ्वी पर नही उतार लाये है ? वास्तव मे भारत-भू पृथ्वी का स्वर्ग है। तभी तो यह महादेश विश्व का अनादिकाल से आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है ! अनेक लुटेरे, अनेक भिखारी आये पर यहाँ की सम्पदा कभी रिक्त नही हुई। अनेक आपदाओ और झझावातो से जूझते रहने पर भी यहाँ के नर-नारियो के अधरो की अल्हड मुस्कान और बालक-बालिकाओ की खिलखिलाहट कभी मलिन नही हुई। विश्व मे कई सस्कृतिया जन्मी, आज सब भू-लुण्ठिता और वचिता है किन्तु भारतीय सस्कृति का गौरव कभी धूमिल नही हुआ क्योकि इस विशाल सस्कृति मे ओज और माधुर्य, प्रज्ञा और पारमिता, आस्था और विश्वास, श्रद्धा और समर्पण, सत्य, निष्ठा और धृति, स्नेह और वात्सल्य – न जाने कितने अमृत स्रोत है जिनसे आप्लावित इस महनीय सस्कृति का अमरत्व कोई भी आक्रामक छीन नही सकता।

विश्व-विजेता सिकन्दर महान् हो या मुहम्मद गोरी, नादिरशाह, महमूद गजनवी अथवा बाबर, सबको इस वत्सला भूमि ने कुछ अद्‌भुत दान दिया है। बाहरी सभ्यताए भी आकर यहाँ पोषित हुई है। यहाँ स्वागत सब का हुआ है। ईसा मसीह हो चाहे पैगम्बर मुहम्मद, जरथुस्त्र हो चाहे कनफ्यूशियस, सुकरात हो चाहे पाइथागोरस, सबकी विचारधारा को यहाँ एक नया आयाम मिला है। साँची का स्तूप, ताजमहल, अजन्ता, एलोरा और एलिफैण्टा की गुफाये, खजुराहो का मुखरित शिल्प विधान, सबने विश्व के कला-कौशल स्थापत्य को कुछ-न-कुछ दिया। अमृता शेरगिल और जामिनीराय की कला-कृतियो को देखकर हमे यह अभाव नही खलता कि माइकलेंजिलो या पाब्लो पिकासो इस देश मे क्यो नही हुए। हनुमान और राम-लक्ष्मण को अपने कनवास पर उतारते हुए मकबूल फिदा हुसेन और राम-कृष्ण स्तुति मे फैयाज खाँ का अलाप प्रदर्शित करते है कि कला की उपासना हो या भक्ति, जाति या सम्प्रदाय, कभी बाधक नही बन सकते। यह भारत की वीणा के विभिन्न तारो की एक बानगी है, उन सब मे भारत की आत्मा की स्वरलहरी तरगित हो रही है।

●

भविष्य का कल्पतरु

भारतीय सस्कृनि के निर्माण मे सन्तो का योगदान सर्वोपरि है। मन, वाणी और काया से हिंसा असत्य, चौर्य और मैथुन का परित्याग कर अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की पचवेणी के तीर्थसलिल से अखिल विश्व के कल्याण का व्रत लेकर चलने वाले महान् सन्तो ने आत्मपरीक्षा और सत्य, शिवम् सुन्दरम् का पावन उपदेश देकर जन-मानस को जहाँ नि श्रेयस् का मार्ग दिखाया वही अपने लिए नाना प्रकार के उपसर्गों का वरण किया है। जैन धर्म की चर्या का तो कहना ही क्या। क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दश अचेल, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण, स्पर्श, जल, सत्कार-पुरस्कार, निशक, प्रज्ञा, अज्ञान और दर्शन—इन २२ परिषहो का वरण कर असिधारा मार्ग पर अनवरत रूप से चलता है। भगवान् महावीर ने साधु जीवन के स्वरूप का निदर्शन करते हुए बताया है कि साधु को ममतारहित, निरहकार, नि शक, और प्राणिमात्र पर समभाव होना चाहिए। लाभ-हानि, सुख-दु ख, जीवन-मरण, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान सब को समभावपूर्वक स्वीकारते चलना अनगार का जीवन धर्म है।

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवर्तित अक्षुण्ण श्रमण-परम्परा के मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज २०वी शताब्दी के विद्यमान प्रकाश स्तम्भ हैं। वे एक विरत, नि स्पृह, सयमशील और सच्चारित्र्य के धारक मनस्वी सन्त है, जिन्होने यौवन के प्रारम्भ के पहले ही किशोरावस्था मे ससार के वैभव-विलास और माया-मोह को छोड कर चिरकालीन उदासीनता के महापथ का अनुसरण किया और नाना प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियो का सामना करते हुए सम्प्रदाय, जाति, धर्म, भाषा, समाज और वर्ग के अनेकानेक विषम कटको से भरे मार्ग का अपनी अद्भुत क्षमता से परिष्कार कर राजमार्ग का निर्माण किया, जिसका अनुसरण कर आने वाली पीढिया जीवन और जगत् की वास्तविकता से परिचय प्राप्त कर सकेंगी और उनके जीवन-यापन की पद्धति का पथ

अधिकाधिक प्रशस्त, समुज्ज्वल, बाधारहित एव सरल होगा। आज भारत मे मानव समाज को सही नेतृत्व प्रदान करने वाले सन्तों मे मुनिश्री सुशील कुमार जी का नाम सबसे पहले लिया जाता है। अपने आध्यात्मिक जीवन मे मानवमात्र के कल्याण का ज्योतिकलश लेकर चलने वाले मुनि श्री का वर्चस्व न केवल भारत अपितु विश्व-मानस ने एक स्वर से स्वीकार किया है। राजनीति का नेता हो, चाहे आध्यात्मिक सन्त, व्यापारी हो अथवा व्यवहारवादी समाज शास्त्री—सबने आपकी गरिमामय जीवन-सरणि से पूर्णता एव अभिवृद्धि का मत्रस्वर ग्रहण किया है। दूसरो के प्रति शिरीषकुसुम से भी कोमल और अपने लिए वज्र से भी कठोर मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज का लोकोत्तर चरित्र जन-जन के लिए वदनीय है। भगवान् महावीर ने चण्ड कौशिक को विष के बदले अमृत का दान दिया, महात्मा गाधी ने अपने हत्यारे नाथू राम गोडसे को किसी प्रकार पीडित न करने को कहा, महात्मा ईसा ने अपना बध करने वाले लोगो के लिए कहा कि हे ईश्वर, इन्हे क्षमा करना क्योकि ये नही जानते कि इनका कर्तव्य क्या है। इसी प्रकार उदारमना मुनिश्री के जीवन मे अनेक ऐसे प्रसग आए जहाँ उन्होने बुराई का प्रतिकार भलाई से कर के अपने हृदय की विशालता, सहिष्णुता और अहिंसावादिता का परिचय दिया। बहुत कम ऐसे लोग मिलते है जो ख्याति एव सिद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने के बाद भी इतने विनम्र, सरल और निरभिमानी रहे हो। तुलसी दास ने कहा भी है —'प्रभुता पाई काहि मद नाही' किन्तु मुनिश्री सुशील कुमार जी ने प्रत्येक ऐसी परिस्थिति मे जहाँ मान और दम्भ का प्रश्न आया, अपनी ऋजुता और दम्भ-राहित्य का ही परिचय दिया है। महाश्रमण मानतु गाचार्य ने कहा है —

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम्।

—हे भगवान् इस ससार मे बहुत-सी माताओ ने सैकडो पुत्रो को जन्म दिया किन्तु किसी भी मा ने तुम्हारे सदृश पुत्र को जन्म नही दिया। सारी दिशायें किरणो को धारण करती हैं किन्तु अनन्त किरणो के धारक सूर्य को तो केवल पूर्व दिशा ही जन्म देती है। भगवान् आदिनाथ के सम्बन्ध मे कही गई यह उक्ति बहुत अशो मे मुनिश्री के सम्बन्ध मे भी घटित होती है। ससार के मनीषी वैज्ञानिक अलबर्ट आइस्टाईन ने महात्मा गाधी के सम्बन्ध मे कहा है—"भावी पीढियां कठिनाई से विश्वास करेंगी कि गाधी जैसा हाड-मास का पुतला इस पृथ्वी पर कभी विचरा था।" आइस्टीन की यह उक्ति मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज के विषय मे पूर्णतया चरितार्थ होती है। अध्यात्म की यह चलती-फिरती प्रतिमा विश्व मे किस के लिए वरणीय नही है! धर्म और समाज के यथातथ्यपरक नेतृत्व को अपने भीतर समाहित करते हुए शांतिप्रियता, गुण-ग्राहकता, विद्वत्ता, लोकप्रियता, आदर्शवादिता और वैराग्य-सम्पन्नता से मडित यह तितिक्षु जब चलता है, करोडो लोग उसके पीछे चल पडते हैं। दर्शक यह कहने के लिए बाध्य हो जाता है :—

चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर।
गड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गए कोटि दृग उसी ओर॥

सम्मोहक व्यक्तित्व, आयामरहित गति और भविष्य के स्वर्णिम सपनो की मशाल लिए चलने वाला साधुमना जननेता जब किसी उद्देश्य के प्रयाण के लिए चलता है तो लगता है जैसे त्रिभुवनविजयी आनन्द का कुसुमशर लिये चल रहा हो और सारा वातावरण किसी विशेष प्रकार के माधुर्य, सात्विक मादकता, और सम्मोहन का शिकार हो गया हो।

महापुरुषो के जीवन की यह स्वाभाविक नियति हुआ करती है कि वे अवढरदानी की तरह प्रत्येक याचक की झोली भर देते है किन्तु अपने न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उन्हे आकिचन्य स्वीकार करना पडता है। मुनिश्री सुशील कुमार जी भी ऐसे ही अकिचनव्रतधारी अनगार है। अनेक प्राणियो की तृषा को अपनी अपार करुणा के अमृत से भिगो देने वाला सबुद्ध जब सामान्य से सामान्यतर के समक्ष अपनी झोली फैलाता है तो लगता है, विश्वम्भर भिक्षु की लीला कर रहा है। ज्ञान की सम्पूर्ण गरिमा को धारण करने वाला जन-जन के प्रति जब अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है तो लगता है कि सरस्वती का अमृतपुत्र अज्ञान का शोधन करने मे लगा है। न जाने कितने प्रतिमान विभूषित होते है, मुनिश्री सुशील कुमार के व्यक्तित्व से।

पैगम्बर मुहम्मद जब इस पृथ्वी पर अवतरित हुए, युग-मानस ने उनके प्रति सामान्य जन का व्यवहार किया। महावीर ने जब कैवल्य की अपरिमित चेतना-सत्ता को धारण किए हुए अपने आप को जन-सामान्य के बीच प्रस्तुत किया तो उनकी वाणी का नाना रूपो मे अर्थानियन हुआ। सुकरात जब अपने सात्विक नीति और सत्यतापूर्ण उपदेश के लिए छल-छन्दरहित बाल-योगी के रूप मे अपने को प्रस्तुत किया, विभ्रान्त जन-समाज के बीच उन्हे विषपान करना पडा। आखिर शिव के अतिरिक्त कौन ऐसा दिगम्बर हो सकता था जो अमृत कलश को विलगा कर त्रैलोक्य के कल्याण के लिए विषघट को अपने भीतर उतार ले? जन-स्वस्ति के इन्ही मानदण्डो मे से एक मानदण्ड है—मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज, मानव की सपूर्ण इयत्ता को अपने अन्तर्जगत् मे देवतुल्य स्थान प्रदान कर निर्धन की कुटिया से राजमहल तक बधुत्व और प्रेम का अलख जगाने वाला तरुण सन्यासी अपने जीवन की अग्निवीणा पर जब स्वर-लहरियो को उतारता है तब तमसामृत दीनों का ससार आलोकित हो उठता है। फिर भी इस देवपुरुष को सन्तोष नही होता। वह कहता है—

गिर चुके फूल हैं डाली के, बुझ चुके दीप हैं थाली के।
वनमाली तेरी पूजा का मैं दूजा क्या सामान करूँ॥

अथवा राम के प्रति व्यक्त किए गए गोस्वामी तुलसीदास के कथन को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाये तो कहना पडेगा

जो गति जोग विराग यतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी को प्रभु न अधिक जिय जानी॥
जो सम्पति दस सीस अरपि करि रावन सिव पह लीन्हीं।
सो सम्पदा विभीषण कहे अति सकुह सहित हरि दीन्हीं॥

देने वाले तो इस ससार मे बहुत हैं किन्तु ऐसा दाता कौन होगा जो याचक को देकर अपने आपको उसका कृतज्ञ माने और याचक को यह अनुभव हो—

'तुम सो जो मांगनो न मांगनो कहायो है।'

दीन-दुखियो की करुण पुकार सुनकर नंगे पाव चल पड़ने वाले प्राणिवत्सल का जीवनव्रत ही जब ऐसा हो तो उसकी उपमा ससार मे सिवाय भागवत् चेतना के और कहा मिलेगी ? मैं नही मानता कि नर को नारायण के रूप मे इतनी बडी प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला सन्त अपने प्रति इतना उदासीन हो सकता है कि अपनी भूख-प्यास, निद्रा, सुख आदि शारीरिक आवश्यकताओ का उसे भान ही न रहता हो। आत्मजागृति के क्षणो मे मानव-जाति का यह कल्पतरु कोटि-कोटि वसत अपने परिवेश मे लेकर चलता है और यश का एक भी सौरभकण अपने मानसिक शरीर पर श्लिष्ट नही होने देता। जिसने अज्ञान के घोर तमस् मे भटकती हुई पीढी के मार्ग को प्रकाशित करने के लिए अपने आपको दिन-रात दीपक की तरह जलाया किन्तु जिसे दीपक होने का भान न हुआ। जो प्रत्येक तत्त्ववेत्ता के लिए सुधानिधि होते हुए भी आत्मनिवेदन के क्षणो मे सामान्यतम घटक के रूप मे अपने आपको स्वीकारता है। उसके स्तवन के लिए शब्द की कौन-सी कोटि समीचीन होगी ! अनेका-नेक जन-प्रतिमाओ को जिसने चैतन्य बनाया उस चेतन सत्ता को क्या नाम दें ! आस्था और विश्वास के रजत लोक मे मुझे जब किसी उपमान की खोज होती है, मैं अपने आप को असमर्थ पाता हू। हिंसा, शोषण, कदाग्रह, अज्ञान, अन्याय, अत्याचार, पीडा और राग-द्वेष से पूर्ण जगत् के बीच जब अनन्य प्रेम की इस अखड शलाका की ओर दृष्टि जाती है तो आशा की असख्य किरणें एक साथ मनोभूमि मे कौध जाती है और लगता है कि इस अभागे युग के भाग्य को सवारने वाला शाति और विश्वमैत्री का देवदूत सबके उद्धार के लिए उद्यत हो गया है।

अध परम्पराओ, रूढ आस्थाओ और आधारहीन मूल्यो के जीर्ण-शीर्ण खडहर को ध्वस्त कर नए आध्यात्मिक विश्व के सृजन के लिए अपने आप को समर्पित कर देने वाले शिल्पी की तरह मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज की भूमिका अपने आप मे अनेक सभावनाओ को सजोये हुए अविरल गति से अग्रसर हो रही है। ससार के बुद्धिवादी दार्शनिक अथवा भौतिकवादी वैज्ञानिक इस परम सत्ता को स्वीकारें या छोड दे, यह निरपेक्ष रूप मे एक दिन नए विश्व के निर्माण का स्वप्न साकार करेगी। हो सकता है, तर्क-वितर्क की बुद्धि अपने भीतर से इस अमृत सलिल को बह जाने दे किन्तु वह कही न कही इस रत्न गर्भा से सुमेरु का निर्माण कर ही लेगा। यह भी हो सकता है कि तामसी वृत्तियो के विरुद्ध उसे बहुत बडे सघर्ष का सामना करना पडे और आसुरी शक्तिया उसके अस्तित्व को समाप्त करने के लिए अपना समग्र अस्तित्व दाव पर लगा दें किन्तु इस अमृत बीज को भौतिक जगत् का कोई भी तत्त्व अस्तित्वहीन नही कर सकता। आशा और निराशा, सफलता और विफलता, उत्थान और पतन, शत्रुता और मित्रता, राग और द्वेष प्रत्येक द्वन्द्व को इस अजेय शक्ति के सम्मुख पराजित होना पडेगा। आने वाला विश्व जिस प्रकार के समग्र व्यक्तित्व का वरण करेगा उसमे इसका स्थान सर्वोपरि होगा। कौन जानता है इसकी मुट्ठी से कितने सूर्य एक साथ उगेंगे और विश्व मानस के भाग्य पर चिरकाल से छाया हुआ दुर्भाग्य का गहन कुहरा कितनी जल्दी विलीन हो जाएगा ! पाशविकता एक दिन इसी अमरता के हाथो पराजित होगी। मानवता के गौरवपूर्ण इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ इसी नायक की यशोगाथा से भास्वर होगा। यही ग्रहपति धराधाम पर शाश्वत भूकम्प

लायेगा। तब विश्व की कौन-सी ऐसी वाणी होगी जिससे इसकी स्वस्ति का स्वर मुखरित नहीं होगा ? पृथ्वी पर एक अभिनव अरुणोदय अवतरित होगा। दिशाओं के कंठ से एक नया गान निःसरित होगा—

इस अभिनव विधान का नायक इस अभिनव वसंत का अलिवर
ज्योतिपुंज विभ्रात जगत् का सबको आज जगाने आया।
उतरा स्वर्ग धरा पर ऐसे धुला तमस् चिरकालिक मन का
परम सुशील तत्त्व की महिमा आओ हम सब मिलकर गायें।

जन्म एवं शैशव

विश्ववन्द्य अभिनव भारत के निर्माता महात्मा गांधी ने कहा था—भारत की आत्मा गावो मे निवास करती है। समय-समय पर गांवो ने ही ऐसे रत्न दिए हैं जिनसे पिरो कर बनाए हुए अगणित कठहारो ने भारत मा के वक्षस्थल को सुशोभित किया है। आज के हरियाणा प्रान्त के गुडगाव जनपद मे शिकोहपुर नाम का एक ऐसा ही ग्राम है जहाँ की प्राकृतिक सुषमा चारो ओर फैली हुई पहाडियो, हरे-भरे खेतो, झीलो, मनोहर वनो और नाना प्रकार के पशु-पक्षियो मे बिखरी पडी है। यहाँ के निवासी सरल हृदय भावुक और मिलनसार हैं। इस छोटे से गाव मे जहाँ मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणो को न्योछावर कर देने वाले वीर सैनिक देश के सजग प्रहरी, शिक्षक और किसान-मजदूर हैं वही विश्व को आध्यात्मिकता का शाश्वत सदेश देने वाले महात्मा भी। विभिन्न जातियो और धार्मिक मान्यताओ के लोग एक-दूसरे से सुख-दु ख मे कधे से कन्धा मिलाकर चलते हैं। उनकी एकता, पारस्परिक प्रेम और एक-दूसरे के प्रति समर्पण की भावना अनुकरणीय है। इसी गाव के लोग एक रात्रि के गहन अधकार और सन्नाटे के वातावरण मे सुख की नीद सो रहे थे कि सहसा आकाश मे घनघोर घटायें घिर आई। बादलो की गर्जना और बिजली की कौंध से प्रकृति मे एक अद्भुत सम्मोहन व्याप्त था। क्षण-क्षण आकाशमण्डल मे कौंध जाने वाली विद्युत् रेखा रात्रि के गहन अधकार मे मानो किसी प्रकाशपु ज के पृथ्वी पर अवतरित होने की सूचना दे रही थी। सारा वातावरण मधुर सगीत से व्याप्त था। एक ब्राह्मण दम्पति अपने शयनागार मे निद्रानिमग्न था। पत्नी स्वप्न-लोक के कुछ दिव्य-दृश्य देख रही थी। जब स्वप्न के दृश्य समाप्त हुए, पत्नी ने पति को सारा वृत्तात सुनाया। सर्वप्रथम पत्नी ने पति का चरणस्पर्श किया। तत्पश्चात् स्वप्न का वर्णन प्रारम्भ हुआ। इस वर्णन को सुनकर पति का हृदय उल्लास से नाच उठा। पति ने कहा—"निश्चय ही हमारे घर मे किसी चमत्कारी आत्मा का प्रादुर्भाव होगा।" पत्नी यह सुनकर हर्ष मिश्रित लज्जा से भाग खडी

हुई। उसका मानस-मयूर प्रसन्नता से नाच रहा था। उसके मानस-पटल पर अनेकानेक रग-बिरगे दृश्य चल-चित्र की तरह घूम रहे थे।

वे पति-पत्नी थे पण्डित सुनहरा सिंह और श्रीमती भारती देवी। पण्डित सुनहरा सिंह जन्मना ब्राह्मण होते हुए भी कर्मणा योद्धा थे जिन्होंने विश्व के कई युद्धो में एक सैनिक के रूप मे भाग लिया। परिवार की देख-रेख का सारा भार श्रीमती भारती देवी पर था जो न केवल नाम से भारती थी, अपितु आचार और व्यवहार मे भी भारतीय नारी की समुज्ज्वल उदाहरण थीं। प्राचीन भारतीय नारी की गरिमा के अनुसार आप उच्च धार्मिक सस्कारो वाली निर्भीक और सौ दु ख पाकर भी अतिथि सेवारत आदर्श गृहणी थी। आपकी शिक्षाओ, अनुशासन और सही मार्ग दर्शन का ही प्रतिफल था कि परिवार के सभी प्राणी अपने-अपने दायित्वो का निर्वाह करते हुए सन्मार्ग पर अग्रसर होने लगे। आप साहस और शौर्य की साक्षात् प्रतिमा थी। एक बार की घटना है, एक ग्रामीण बालक को उसके परिवार वालो ने सताया। आपके मातृ-हृदय से भला यह कैसे सहन हो सकता था। आपने तत्काल उसका विरोध किया। बात यहाँ तक बढी कि वे लोग लडाई-झगडे पर उतारू हो गए। उस समय घर मे आपके सिवा अन्य कोई भी सदस्य उपस्थित नही था। स्वय ही लाठी लेकर आप मैदान मे उतर आई और बडी बहादुरी से उन्हे ललकारा। मुकाबले मे प्रतिपक्षियो को मु ह की खानी पडी।

धीरे-धीरे ६ मास व्यतीत हुए। १५ जून सन् १६२६ को जब एक ओर भारतवर्ष स्वातत्र्य सग्राम मे व्यस्त था और दूसरी ओर देश मे साम्प्रदायिकता की आग भडक रही थी, मनुष्य-मनुष्य के खून का प्यासा था, मा भारती की कोख से एक सुन्दर सुकान्त बालक का जन्म हुआ। चारो ओर आनद की लहरें छा गईं। एक अद्भुत आह्लाद चारो ओर के परिवेश से परिलक्षित होने लगा। जो भी नवजात शिशु का दर्शन करता वह कृतकृत्य हो जाता। काल-क्रम से चन्द्रमा की कलाओ की तरह बाल शिशु बढने लगा। जब नामकरण का समय आया तो नाम पडा सरदार सिंह। घर के सभी सदस्य उसे सरदार कह कर पुकारते थे। समय का विधान कहिए कि बाद मे उसका नाम सही अर्थों मे सार्थक हुआ और वह जनता का सरदार बना।

एक दिन की बात है, बालक सरदार जब ६-७ वर्ष का ही था कि घूमता-घूमता गाव के बाहर निकल गया और खुले वातावरण मे दूर-दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेत खलिहानो को देखता हुआ ठडी-ठडी समीर का आनद लेता हुआ प्राकृतिक दृश्यो का अवलोकन करने लगा। बालक क्या देखता है कि साथ ही के एक खलिहान मे एक बूढा व्यक्ति लाठी का सहारा ले कर झुका हुआ चल रहा है, जिसके चेहरे पर झुर्रिया पडी हुई हैं, दन्तविहीन पोपला मु ह और शरीर अस्थिपजर-सा प्रतीत हो रहा है। वह कभी इधर और कभी उधर आ-जा रहा है। बालक सरदार का सवेदनशील हृदय विचलित हो उठा। शीघ्र ही उसके पास जाकर उसने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की, "बाबा यहा क्या कर रहे हो ? क्या यहा तुम्हारा कुछ खो गया है ?" बूढा व्यक्ति जिसकी आखें दया की याचना-सी करती हुई प्रतीत हो रही थी, बोला, "नही बेटे ऐसी कोई बात नही। मैं तो यहा इस खेत की रखवाली कर रहा हूँ और जीवन मे अपने किए हुए कर्मों का फल भोगते हुए आयु के शेष दिन व्यतीत कर रहा

हूँ ।'' बच्चे ने भोलेपन से पूछा, ''बाबा कर्म के फल से तुम्हारा क्या मतलब ?'' बूढा व्यक्ति जिसने अपने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे, बच्चे के इस प्रश्न का क्या उत्तर देता । जिस ने अभी तक अपने शैशव के ७ वर्ष भी पूरे नही किए थे । किन्तु बालक की जिज्ञासा ने बूढे को आश्चर्य मे डाल दिया । उसने जैसे बालक सरदार की जिज्ञासा को टालते हुए कहा, ''जाओ बेटे खेलो-कूदो और जीवन का आनद लो । समय आने पर स्वय ही तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा !''

बालक सरदार का हृदय बूढ़े व्यक्ति की दशा देखकर करुणा से भर गया । वह बूढ़े के मन को और अधिक दुखाना नही चाहता था । इस लिए यह जिज्ञासा अपने मन मे लिए हुए ही घर की ओर लौट पड़ा । रात्रि भर उसके मन मे रह-रह कर बूढ़े व्यक्ति की शोचनीय दशा का विचार आता-जाता रहा । कभी उसके जर्जर शरीर का ढाचा उसकी आँखो के आगे घूमने लगता तो कभी विचारमग्न होकर यह सोचता कि बाबा ने कहा था कि यह सब कर्मों का फल है । समय आने पर स्वय समझ जाओगे । आखिर यह कर्म क्या है ? मैं स्वय इसे कैसे समझ पाऊ गा ?

समय का चक्र चलता रहा । बालक सरदार प्रतिदिन किसी विशेष विचार मे खोया हुआ-सा रहने लगा । एक दिन ऐसा भी आया जब ७ वर्ष के अल्पवय मे ही अपने माता और पिता का घर छोडकर किसी और घर का मेहमान बनकर सरदार चला गया । बालक के हृदय मे उथल-पुथल मची हुई थी । अपने पुत्र की यह दशा मा भारती से कैसे छिपी रह सकती थी । जब मा ने बालक की उदासी और अन्यमनस्कता का कारण पूछा तो सरदार ने सहज ढग से उत्तर दिया, ''मा तुम्हारे घर मे मुझे किसी बात की चिन्ता नही है ।'' मा सरदार के उत्तर से आश्वस्त नही हुई । कोई न कोई बात अवश्य थी जिसे उसका पुत्र उससे छिपा रहा था ।

एक दिन सरदार की बुआ श्रीमती चम्पा जी का आगमन हुआ । आते ही उन्होंने बालक सरदार के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखकर भारती जी से कहा, ''तुम कितनी भाग्यशालिनी हो, ऐसा पुत्र रत्न पाकर !'' यह कहते-कहते उनकी आखे भर आईं । इसका कारण यह था कि उनकी एक कन्या के सिवाय कोई सतान नही थी और भारतीय समाज मे सन्तानहीना स्त्री की आन्तरिक व्यथा का अनुमान लगाया जा सकता है । श्रीमती चम्पा देवी के मन मे विचार आया कि यदि यह बच्चा मुझे मिल जाये तो मै धन्य हो जाऊ गी । एक दिन अनुकूल समय पाकर श्रीमती चम्पा ने अपनी मनोभावना सरदार के माता-पिता के सम्मुख व्यक्त कर दी । उन्होने याचना के स्वर मे कहा, ''यदि सरदार को आप मेरी झोली मे डाल दें तो मेरी अन्धेरी दुनिया मे उजाला हो जायेगा और मेरा स्त्री-जीवन सार्थक हो जाएगा । इसके लिए मैं जीवन भर आप लोगो की आभारी रहूँगी और प्राणपण से सरदार का लालन-पालन करू गी ।'' श्रीमती चम्पा के इस प्रस्ताव ने पण्डित सुनहरा सिह और श्रीमती भारती देवी को असमंजस मे डाल दिया । एक ओर बहन के हृदय की व्यथा और दूसरी ओर सन्तान के प्रति मोह था । श्रीमती चम्पा की आखो से बहती हुई अविरल अश्रुधारा मे सरदार के माता-पिता को अभिभूत कर दिया । पडित सुनहरा सिंह ने बहन को सात्वना देते हुए कहा, ''रो मत बहन, सरदार तुम्हारे पास रहे या मेरे पास, दोनों मे कोई अन्तर नही है ।

तुम्हारी खुशी के लिए मैं अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग कर सकता हूँ।" इतना कह कर उन्होंने सरदार को श्रीमती चम्पा देवी को समर्पित कर दिया। श्रीमती चम्पा की आखो से प्रसन्नता के आसू फिर एक बार ढुलक गए। उनके चेहरे पर एक अपूर्व आभा दौड गई। ऐसा लगा जैसे उनका मन-मयूर अकाल मे जलदोदय से नाच उठा हो। उनके हृदय की कली खिल उठी। अनेक बार उन्होंने सरदार को अपनी गोद मे उठा कर चूमा, प्यार किया और अपने वक्षस्थल से चिपकाये रही। बालक सरदार के मन पर इस घटनाक्रम का कोई विशेष प्रभाव नही पडा। निर्लेप होकर वह बालसुलभ दृष्टि से सब कुछ देखता रहा।

बालक सरदार के लिए मा भारती और बुआ चम्पा जी मे कोई अन्तर नही दिखाई दिया। सभवत दोनो मे वात्सल्य का एक ही हृदय विद्यमान था। अब बालक सरदार अपनी बुआ जी के घर पर बडे ही लाड-प्यार से रहने लगा। सरदार को गन्ना चूसने का बडा शौक था। गन्ने की ललक ने ही सबसे अधिक सरदार को अपनी ओर आकर्षित किया। आज के मुनि श्री सुशील कुमार जी अब भी अपने बचपन के सस्मरण के क्षणो मे गन्ने के प्रति अपने अनन्य प्रेम और झुकाव की बात नही भूलते। बुआ का घर मेरठ जिले के सरूरपुर गाँव मे था। आज तो सरूरपुर एक ऐतिहासिक महत्व का गाव बन गया है और वहा के नर-नारियो मे बालक सरदार (मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज) के जीवनक्रम की अनेक मधुर स्मृतिया जुडी हुई हैं। बुआ जी तथा फूफा पडित बलवन्त सिह जी हर समय बालक का ध्यान रखते और सदा इस प्रयास मे लगे रहते थे कि कही बच्चे को कोई कष्ट न पहुचने पाये।

शैशव का विकासक्रम ऐसे ही चल रहा था कि पडित बलवन्त सिह जी कही जाने की तैयारी मे जुटे हुए थे। बालक सरदार ने उनसे पूछा— आप कहा जा रहे है ? पडित जी ने सीधा-सा उत्तर दिया, "बेटा मैं जगराव जा रहा हू। बालक सरदार के कौतूहल-पूर्ण मानस के लिए इतना-सा उत्तर पर्याप्त नही था। उसने पुन प्रश्न किया, "जगराव किस लिए जा रहे है ?" पडित जी ने हस कर कहा, "बेटा, वहा एक महान् सन्त आए हुए है, मैं उन्ही के दर्शन के लिए जा रहा हूँ।" 'सन्त' शब्द बालक सरदार के लिए नया था। उसने इच्छा प्रकट की—"मै भी उनके दर्शन करने चलूगा।" पडित जी ने बच्चे को बहलाना चाहा। उन्होने कहा, "बेटा, तुम्हारी अवस्था अभी खेलने-कूदने की है। जब तुम बडे हो जाओगे, तब उनके दर्शन करना। किन्तु सरदार इस बात के लिए तैयार नही था। उसने हठ पकड ली कि मैं उनके दर्शन करने अवश्य चलूगा। उस समय बालक सरदार के मन मे सहसा बूढे का दृश्य कौंध आया, जिसे कुछ ही दिनो पहले उसने खलिहान मे देखा था। उसके मन मे विकल्प उठने लगे, शायद वह सन्त उन प्रश्नो का उत्तर दे सकेगा, जो अभी तक अनुत्तरित रह गए हैं। बालक के हठ के समक्ष पडित बलवन्त सिह जी के सभी तर्क और युक्तिया पराजित हो गईं। बालक को साथ ले कर वे जगराव को चले। दोनो जिस महान् सत का दर्शन करने जा रहे थे वे कोई और नही, बल्कि पडित बलवन्त सिह जी के ससारी रिश्ते के भाई पण्डित रत्न मुनि श्री छोटे लाल जी महाराज थे, जो आगे चलकर मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज के दीक्षा गुरु बने।

गाडी गन्तव्य स्थल की ओर जा रही थी। खिडकी के बाहर सारी दुनिया भागती

हुई दिखाई दे रही थी । बाहर का सारा दृश्य चलायमान हो रहा था । बालक सरदार का मन भी अनेक प्रकार के प्रश्नो मे उलझा हुआ था । सहसा उसने प्रश्न किया अपने फूफा जी से—"क्या आपके भाई को घर में कोई कष्ट था ? किसी ने उन्हे मारा-पीटा था या किसी तरह का अभाव था, जिसके कारण वे घर छोड़कर साधु हो गए ?" छोटे से बालक के मु ह से ऐसे सारगर्भित प्रश्न को सुनकर पण्डित बलवन्त सिंह को जैसे अपने इस कुलरत्न पर बडा गर्व हुआ । वे समझाने के स्वर मे बोले, "बेटा, उन्हें घर मे किसी प्रकार का न तो कोई कष्ट था और न ही कोई अभाव । सुख की सभी सुविधाए विद्यमान थी किन्तु पूर्व जन्म के सस्कारो के कारण उनके मन मे वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे साधु सन्तो की सगति मे रहने लगे । जब भी कोई महापुरुष गांव मे आता, वे उसका प्रवचन सुनने के लिए जाते । धीरे-धीरे ऐहिक वस्तुओ के प्रति उनके मन मे विरक्ति उत्पन्न होने लगी । वे हर समय खोये-खोये-से रहने लगे । ऐसे ही समय हमारे गाव मे एक बहुत तेजस्वी सन्त आए । अन्य लोगो के साथ-साथ मेरे भाई भी गए और उस दिन से प्रति दिन नियमित रूप से उनका प्रवचन सुनने के लिए जाने लगे । उनके प्रवचन से छोटे लाल जी इतने प्रभावित हुए कि घर त्याग कर साधु बनने की अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त की । वह नाम से तो छोटे थे किन्तु तपस्या, ज्ञान,दर्शन और चारित्र्य ने उन्हे बडा बना दिया । अनेक भाषाओ का ज्ञान प्राप्त करके महान् पण्डित बने और फिर अज्ञान को दूर करने के लिए अनेक ग्रन्थो की रचना की । हजारो सासारिक प्राणियो को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी ।"

बालक सरदार पण्डित बलवन्त सिंह जी के उद्गारो को सुनकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था । गाडी जगराव पहुँची । जगराव जैन धर्म के अनुयायियो का एक बहुत बडा तीर्थ बन गया है । यही वह जगराव की पुण्यस्थली है, जहा जैन धर्म के सिद्ध सन्त प्रात - स्मरणीय मुनिश्री रूपचन्द जी महाराज की समाधि है, जिस पर प्रति वर्ष लाखो व्यक्ति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने आते है और अपने मनोवाछित फल प्राप्त कर घर लौटते है । स्वर्गीय श्री रूपचन्द जी महाराज ने जगराव मे अपने दस चातुर्मास किये । गाडी से उतर कर पण्डित श्री बलवन्त सिंह जी और सरदार बडी श्रद्धा और विश्वास के साथ मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के श्रीचरणो मे उपस्थित हुए । वहा पहुँचते ही उनको शोक समाचार मिला कि मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के गुरुदेव पूज्य श्री गोविन्दराम जी का स्वर्गवास हो गया है । श्री गोविन्दराम जी महाराज तेजस्वी, शास्त्रज्ञ और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे । जो भी एक बार उनके सम्पर्क मे आ जाता था, उनसे प्रभावित हुए बिना नही जाता था । ऐसे तेजस्वी सन्त के निधन से बालक सरदार के मन को भी आघात लगा । किन्तु उनके अवचेतन मन मे यह धारणा व्याप्त थी कि मनुष्य का शरीर नश्वर है । इस ससार मे जो जन्म लेता है उसे मृत्यु का भी वरण करना पडता है । आत्मा अमर है और शरीर नाशवान् । आत्मा शाश्वत है और शरीर अस्थायी । फिर मिथ्या वस्तु के लिए शोक क्यो किया जाए ? मुनिश्री गोविन्दराम जी महाराज को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए एक शोक सभा हुई, जिसमे स्वर्गीय मुनिश्री के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए श्री छोटेलाल जी महाराज ने बताया कि गुरुदेव श्री गोविन्दराम जी महाराज तप और त्याग की साक्षात् प्रतिमा थे, उनका सारा जीवन चमत्कारपूर्ण था जिसका स्वय मैंने अनुभव किया है और

उनके चमत्कारिक क्रिया-कलाप का मेरे व्यक्तिगत जीवन पर बहुत बडा प्रभाव पडा ।

बालक सरदार नित्य प्रति नियमित रूप से मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज की अमृतमयी वाणी का श्रवण करने लगा । उसके बाल मन पर मुनिश्री जी की शिक्षाओ की गहरी छाप थी । वह बहुत-सा समय विचारमग्न और चिंतातुर रह कर बिताने लगा । अन्त मे उसने निर्णय कर लिया कि ससार मे कोई अपना नही । आत्मा अकेले ही इस ससार मे आया है और अपने शुभाशुभ कर्मो का फल भोग कर अन्त मे अकेले ही इस ससार से चला जाता है । न कोई इस ससार मे हितू है न मित्र, क्यो न जो मानव-देह हमे मिली है उसका सदुपयोग कर बार-बार के जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने का प्रयास किया जाय । इस प्रकार की विचारधारा को अपने भीतर ही भीतर सात दिन तक सरदार पालता रहा और अन्त मे निर्णय का क्षण भी आ पहुँचा । पण्डित बलवन्त सिह जी वापस जाने के लिए जब तैयार हुए तो बालक सरदार ने उनके साथ चलने की अनिच्छा प्रकट की । उस ने कहा, "आप को जाना हो तो जाइए और माता जी से मेरा प्रणाम निवेदित करने के पश्चात् यह भी बता दीजिएगा कि आपका बेटा अब ऐसे स्थान पर पहुँच चुका है जहा से लौटकर आना अब स्वय उसके वश की भी बात नही रही है । माता जी का और मेरा बस इतना ही सम्बन्ध था । अब तो मै महाराज श्री के चरणो मे रह कर अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयास करू गा ।" इतना कहकर बालक सरदार ने मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज के पाँव पकड लिए । पण्डित जी को इस की आशा भी नही थी, छोटा-सा आठ वर्ष की आयु का बालक जिसके चेहरे से भोलापन रह-रह कर झलक रहा था, ऐसा निर्णय कर लेगा । पण्डित जी ने बहुत समझाया-बुझाया, अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए और साधु-जीवन की कठिनाइयो का भय भी दिखाया । पर बालक ने तो यह दृढ निश्चय कर लिया था कि वह अपने सकल्प से टम से मस नही होगा ।

मुनि श्री छोटे लाल जी महाराज ने अपनी शरण मे पडे बालक के भावी जीवन पर अपने तपोबल के माध्यम से दृष्टिपात किया तो उन्हे स्फुरणा हुई कि यह कोई साधारण बालक नही अपितु होनहार बालक है जो आगे चलकर महान् पुरुष बनने वाला है । मुनि श्री ने पण्डित बलवन्त सिह जी को इसके भविष्य के सम्बन्ध मे बताया । अन्त मे बालक सरदार के हठ के सामने पण्डित बलवन्त सिह को हार माननी पडी और मुनिश्री की भविष्यवाणी को शिरोधार्य कर सरदार को मुनि श्री के चरणो मे सौप कर चल पडे ।

तब सरदार की अवस्था केवल आठ वर्ष की थी । बालसुलभ चचलता और खेलकूद मे तन्मयता ने एक नया रूप लिया । गुरुदेव प्रात काल ब्राह्ममुहूर्त मे सरदार को जगाते और बालक को जीव, अजीव, पाप, पुण्य आदि के सम्बन्ध मे शिक्षा देते । बालक सरदार की प्रतिभा अद्भुत थी । गुरुदेव द्वारा सुनी हुई वाणी को वह शीघ्र ही हृदयगम कर लेता । धीरे-धीरे उसने २५ बोल का थोकडा, ६ तत्व, २६ द्वार, प्रतिक्रमण, तत्वार्थ सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, भक्तारस्तोत्र, साधु गुणमाला आदि अनेक ग्रन्थ कठस्थ कर लिए । गुरुदेव श्री के सान्निध्य मे उसे व्यावहारिक शिक्षा भी मिलती रही । बालक सरदार बिना तर्क-वितर्क के गुरुदेव की एक भी बात को स्वीकार नही करता । गुरुदेव भी उसकी सभी शकाओ का समाधान बहुत ही सरल और सूक्ष्म ढग से करते थे । जैन साधु की समाचारी के अनुसार

बालक सरदार गुरुदेव के साथ पदयात्रा करते। गुरुदेव के साथ विचरण करते हुए पजाब मे रावी के तट पर स्थित एक नगर में पहुँचे, जहां एक अद्‌भुत घटना घटी। पत्तन नामक स्थान पर आप रात्रि मे सोये हुए थे कि आप ने एक स्वप्न देखा, जिसमे एक चमत्कारी महापुरुष आप से कहता है, "बच्चा उठो और अब शीघ्र ही साधु का जीवन धारण कर लो।" इतना कहकर वह महापुरुष अन्तर्ध्यान हो जाता है। यह महापुरुष कोई और नही, अपितु महान् तपस्वी और सिद्ध मुनि मुनिश्री रूपचन्द जी महाराज थे। स्वप्न मे ही बालक सरदार ने मुनिश्री रूपचन्द जी से आशीर्वाद मांगा। तभी से धर्म के प्रति उसके मन मे श्रद्धा, विश्वास और समर्पण की जडें और अधिक गहराई मे जमती गईं।

●

दीक्षा

अन्त मे सन् १९४२ का वह वर्ष भी आ पहुँचा जब भारत मे स्वतत्रता के लिए राजनैतिक उथल-पुथल मची हुई थी। जब सर स्टेफर्ड क्रिप्स का मिशन असफल हो कर वापस इगलैंड पहुँच गया। यह वह समय था जब जापानी भारतवर्ष के प्रवेश द्वार पर खडे थे। गाधी जी ने 'अग्रेजो भारत छोडो' का नारा सारे देश को दिया। अग्रेज सरकार ने निहत्थे भारतीयो पर नाना प्रकार के अत्याचार किए। जब एक महादेश एक अहिंसक सन्त के नेतृत्व मे स्वतत्रता की लडाई लड रहा था, तभी जगराव मे घोषणा हुई कि २० अप्रैल १९४२ के शुभ दिन बालक सरदार का दीक्षा समारोह सम्पन्न होगा। चारो ओर खुशियो की लहर दौड गई। दूर-दूर स्थानो के अनेक साधु-साध्वी, नर-नारी, बालक और युवा जगराव नगर मे एकत्र होने लगे। सरदार की आर्हती दीक्षा की तैयारिया धूम-धाम से होने लगी। फिर वह शुभ घडी भी आ पहुँची जिसके लिये सब के मन मे उत्सुकता व्याप्त थी। दीक्षास्थल पर विशाल जन-समूह पुष्पो की वर्षा, अनेक प्रकार के नाच-गान और कलाओ का प्रदर्शन हो रहा था। समारोह का प्रमुख आकर्षण था वैरागी सरदार, जिसके मुख-मडल की अलौकिकता को निहार कर उपस्थित जनसमूह प्रफुल्लित हो रहा था। तत्कालीन पजाब श्रमण सघ के आचार्य पूज्य श्री आत्मा राम जी महाराज ने दीक्षा का पाठ पढाया और महान् योगी स्थविरपदविभूषित श्री कुदन लाल जी महाराज के शुभ आशीर्वाद से पूज्य श्री छोटे लाल जी महाराज के निश्राय मे भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। दीक्षा के पश्चात् वैरागी सरदार का नाम 'मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज' रखा गया। अपने दीक्षा के पावन प्रसग पर बोलते हुए मुनि श्री ने कहा था, "आज मै मन, वचन और काया से सावद्य कर्मों का परित्याग कर पच महाव्रतधारी अनगार का पथ स्वीकार कर रहा हूँ। जिस पथ पर चलकर अनेकानेक आत्माओ ने परम पद को प्राप्त किया है। वह दिन मेरे लिए धन्य होगा जब मैं मन, वचन और काया से सपूर्ण मानव-जाति और ८४ लाख जीवो के कल्याण के लिए

अपने आप को समर्पित कर दू गा । मैं सच्चे हृदय से स्वीकार करता हूँ कि मानव-जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि आत्म-दर्शन है । आत्मा के विशाल साम्राज्य और उसके विभ्राट् रूप के दर्शन के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के महाव्रत को स्वीकार कर उसका सतत् पालन ही मेरा ध्येय है । सर्वत्र मानव-समाज मे अज्ञान, अत्याचार और अभाव का जो कारुणिक दृश्य उपस्थित हो रहा है उसका निराकरण कर पारस्परिक बधुत्व, समभाव और मैत्री का विस्तार ही मेरा लक्ष्य है । मैं वीतराग प्रभु महावीर के पथ का अनुगामी हूँ । मैं आजीवन सयमपूर्वक जीवन व्यतीत करू गा ।" उपस्थित जनता ने किशोर परिव्राजक की वाणी मे सत्यता का दर्शन किया । उसके हिमालय जैसे अटल सकल्प ने जनता को आशावान् बनाया । सब ने करतल ध्वनि से उसके उज्ज्वल भविष्य और सयम-जीवन की सफलता की मगल कामना की ।

मुनिश्री सुशील कुमार जी ने उस जीवन का वरण किया, जिसके लिए कहा गया है :

साधू जीवन कठिन है ऊँचा पेड़ खजूर ।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस गिरे तो चकना चूर ।।

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् मुनिश्री सुशील कुमार जी को कल्पना का एक अद्भुत ससार मिला । तरुणाई के अनेकानेक सपने उनके मानस मे मचल गए थे । ऐसा प्रतीत होता था मानो विशाल मरु-भूमि मे अमृत की भागीरथी बहा देने का अदम्य सकल्प लिए एक युवा सन्यासी चल पडा । अब मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज साधु-वर्ग मे सम्मिलित हो गए । उनके आगमन से ऐमा लगा जैसे सत-समाज रूपी उपवन मे अभिनव वसन्त का आगमन हो गया हो । तेजोमय आभा से दमकता हुआ मुख मण्डल, उन्नत ललाट, मुख पर श्वेत मुख-वस्त्रिका और कन्धे पर रजोहरण, शरीर पर धवल वस्त्र, यही था उनका साधु वेष ।

सस्कृत साहित्य की एक मार्मिक उक्ति है

यथा चतुर्भि कनकं परीक्ष्यते
निर्घषणच्छेदनतापताडनैः
तथा चतुर्भि पुरुष परीक्ष्यते
ज्ञानेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।

जिस प्रकार घर्षण, छेदन, ताप और ताडन चार विधियो से स्वर्ण की परीक्षा होती है उसी प्रकार ज्ञान, शील, गुण और कर्म से मनुष्य की परीक्षा होती है । मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने पूज्य गुरुदेव मुनिश्री छोटे लाल जी महाराज की शरण मे आकर व्यक्ति, समाज और देश के लिए स्वर्ण के रूप मे अपने आप को प्रस्तुत किया । अहिसा का पालन करते हुए ज्ञान, दर्शन और चरित्र के क्षेत्र मे गहरे उतरते गये और मानसरोवर मे डुबकी लगाकर मोती ढूढ लाने वाले हस की तरह उन्होने सेवा, तप, त्याग और श्रद्धापूर्ण भक्ति तथा लगन से अपने गुरुदेव पूज्यश्री छोटे लाल जी महाराज के ज्ञान रूपी सरोवर से न जाने कितने अनमोल मोती प्राप्त किए । अपनी जीवनदायिनी उपलब्धियो को मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने आप तक ही सीमित न रख कर विश्व तथा मानवमात्र के कल्याण के लिए उसका विसर्जन किया, जिसके उद्धरण उनके जीवनक्रम के पग-पग पर मिलेगे ।

तरुणाई के सपने

विद्याध्ययन को मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने सयम जीवन के प्रथम चरण के रूप मे स्वीकारा। यह वह समय था जब जर्मनी, इटली और जापान जैसी महाशक्तियो ने मिलकर पूरे विश्व को रौदने के विचार से विध्वस मचा रखा था। निरीह जनता का अस्तित्व खतरे मे था। असहाय और साधनहीन लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे। भारत अभावग्रस्तता के दौर से गुजर रहा था। ऐसी सक्रमण कालीन परिस्थिति मे मुनिश्री सुशील कुमार जी पूरी निष्ठा और लगन से अपनी विद्या के अर्जन मे लगे। हिटलर के अत्याचारो की कहानी ने मुनिश्री के मानस को बुरी तरह झकझोर दिया। वे विचलित हो उठे। तभी गुरुदेव की आज्ञा हुई कि सुशील अभी तुम शात रहो और अपना अधिक से अधिक समय ज्ञानार्जन म लगाओ। जब पाप का घडा भर जाता है तो समय आने पर वह अपने आप फूटता है। गुरु-आज्ञा को स्वीकार कर पुन मुनिश्री अपने अध्ययन म लीन हो गए।

धीरे-धीरे मुनिश्री सुशील कुमार जी मे नेतृत्व की शक्ति विकसित होने लगी। वे यह अनुभव करने लगे थे कि युवा वर्ग ही महात्मा गाधी के स्वप्नो को साकार कर सकता है। युवा पीढी ही आत्म-बलिदान के मार्ग पर अग्रसर हो कर समाज और राष्ट का नेतृत्व कर सकती है। सदियो से दासता की शृखला मे जकडी हुई भारत मा का उद्धार केवल युवा ही कर सकते है। तरुण सन्यासी का मानस युवावर्ग के सम्बन्ध मे नाना प्रकार की कल्पनाओ से आदोलित हो रहा था। महात्मा गाधी के नेतृत्व मे सारा देश स्वतन्त्रता सग्राम मे व्यस्त था। स्वतन्त्रता की कुछ आशायें भी बँध गई थी। मुनिश्री सुशील कुमार जी इस ताक मे थे कि किस कोने से स्वतन्त्रता सग्राम मे प्रवेश किया जाये। एक ओर अहिसा और प्रेम का उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन और दूसरी ओर क्रन्दन करती हुई भारत मा की करुण पुकार! जब कभी उनके विकल्प के चयन का प्रश्न आता, वे मन ही मन उदास हो जाते। जब कभी उन्हे सामान्य जनता के बीच अपने को व्यक्त करने का अवसर मिलता

वे अहिंसक राज्य-क्रांति मे सक्रिय भाग लेने के लिए युवको को प्रेरित करते। स्वदेशी का प्रचार, स्वावलम्बन, श्रमदान, अभय आदि का उन्होने उपदेश किया। इनकी प्रेरणा से युवको के कई सगठन बने जिन्होने अनाम रह कर भारत के स्वातन्त्र्य यज्ञ मे अपनी आहुति दी। आप की वाणी मे इतना ओज था कि आपके सम्पर्क मे आने वाला कोई भी युवा उससे प्रभावित हुए बिना न रह सका। आप ने जगह-जगह घूमकर स्वतन्त्रता की अलख जगाई और शिथिल तथा चेष्टाहीन शिराओ मे जागरण एव प्रयाण का मत्र फूका। साधु मर्यादा मे रहते हुए जितना भी सभव हो सका आप ने अपना योगदान दिया।

युवको के बीच एक बार अपना विचार व्यक्त करते हुए आपने कहा, "यह महान् देश भारतवर्ष एक बार फिर सारे ससार के लिये ज्ञान, कौशल, मेधा तथा अमृत का प्रकाश-स्तम्भ बनकर आज के भौतिकवाद मे भटके विश्व को शाति और आध्यात्मिकता का सन्देश दे सकता है। आज जो निराशा और बेचैनी युवा पीढी मे दृष्टिगोचर हो रही है वह स्वत ही समाप्त हो सकती है। पर इस कटु सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जहाँ एक ओर युवा-वर्ग अपने सही रास्त से भटक गया है वहाँ दूसरी ओर अधिकाश शिक्षक वर्ग भी उस मापदण्ड पर उतना खरा नही उतरता जिसकी अपेक्षा प्रत्येक विद्यार्थी को अपने शिक्षक से होती है। यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसी विकट परिस्थितियाँ फिर उठ आई हैं। जिस प्रकार कमल का फूल कीचड मे रहकर भी अपने सौष्ठव और सुरभि से सबको आनदित करता है और परिवेश के सौदर्य मे चार चाँद लगाता है उसी प्रकार मुनिश्री सुशील कुमार जी विषमय वातावरण मे रहते हुए विश्व-जन के लिये सौख्य एव सद्प्रेरणा के स्रोत बने रहे।

स्वतन्त्रता सग्राम के क्षितिज पर एक नये ध्रुव का उदय हुआ। भारत माता के एक वीर सपूत श्री सुभाष चन्द्र बोस ने सिगापुर मे भारत की स्वतन्त्रता के लिये आजाद हिन्द फौज की स्थापना कर के वीरता के क्षेत्र मे विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। तभी मुनि श्री सुशील कुमार जी ने उद्घोषणा की कि स्वतन्त्रता केवल शब्दो से नही बल्कि अदम्य साहस और शक्ति के बल पर ही प्राप्त की जा सकती है। विश्व मे जिसने स्वतन्त्रता का मूल्य न चुकाया हो ऐसा कोई भी देश इतिहास के पृष्ठो मे अकित नही है। लगता है, अब वह समय दूर नही जब भारत माता की दासता की बेडियाँ छिन्न-भिन्न हो जायेंगी। इसी प्रकार अपनी ओजमयी वाणी से जनता को उद्‌बोधन देते हुए मुनिश्री ने पजाब मे नवा शहर और मोगा मे वर्षावास किया।

वहाँ से अपना वर्षावास समाप्त कर जगराव की धर्मप्रेमी जनता की भाव-भरी विनती को स्वीकार कर आप पूज्य गुरुदेव श्री छोटे लाल जी महाराज के साथ जगराव पधारे। उसी समय वहाँ महाराज श्री कुदन लाल जी पधारे हुए थे। पूज्य श्री कुन्दन लाल महाराज का आप पर अपार प्रेम था। मुनिश्री कुन्दन लाल महाराज के सान्निध्य मे आपने नाना प्रकार की यौगिक साधनाओ का अभ्यास किया। आपके प्रेम, विनय, भक्ति और श्रद्धा से मुनिश्री कुन्दन जाल जी महाराज बहुत प्रभावित हुए।

एक बार फिर मानवता पर घोर वज्रपात हुआ। जापान के दो नगरो नागासाकी और हिरोशिमा पर एटम बम बरसाया गया, जिसके फलस्वरूप भीषण नर सहार हुआ। इस दानवी कुकृत्य की भर्त्सना करते हुए मुनिश्री सुशील कुमार जी ने कहा कि हम किसी पर

शक्ति के बल पर विजय नही प्राप्त कर सकते । यदि सही अर्थों मे हमे किसी पर विजय प्राप्त करनी है तो हमे उसके हृदय पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। ऐसी विजय युद्ध या सहारक अस्त्रो के सहारे नही अपितु प्रेम और पारस्परिक सहयोग की भावना का विस्तार करके ही प्राप्त की जा सकती है। यदि कोई व्यक्तिगत रूप से ससार पर अपनी एकछत्र प्रभुसत्ता स्थापित करना चाहता है तो यह असम्भव है। वह चाहे कितना ही बलवान् हो क्योकि तलवार का यह दर्शन है कि उससे मजबूत तलवार एक दिन उसे काट देती है। जिस हिटलर ने विश्वविजय प्राप्त करने के सकल्प किए, विश्व-सम्राट् बनने के सपने देखे, उसका अस्तित्व इस प्रकार समाप्त हुआ जैसे आकाश से कोई तारा चुपचाप टूट कर गिर गया हो। काश, उसने शक्ति के मद मे चूर होकर गलत दिशा मे कदम न बढाये होते तो क्या आज के विश्व का वह महान् युगपुरुष न बन गया होता ? जो जर्मनी आज तक दूसरो की सलाह मानने को विवश है क्या वह एक स्वतत्र और महान् राष्ट्र न होता ? इतने साधन, इतना ज्ञान-विज्ञान और इतनी सूझ-बूझ के होते हुए भी जमनी की यह दशा विधि की सदा से ही क्रूर विडबना रही है कि अह की भावना ने सदा ही निरपराध लोगो को यातनाए पहुँचाई है और विश्व की सस्कृति के विनाश का कारण बनी है। भारत का इतिहास तो ऐसी घटनाओ से भरा पडा है। क्या रावण कम विद्वान् था ? चारो वेदो का जानने वाला महान् पण्डित और सोने की लका पर शासन करने वाला सम्राट् भी अहम् की भावना से नष्ट-भ्रष्ट हो गया। कस और दुर्योधन के उदाहरण भी ऐसे ही है। दूसरी ओर प्रेम और अहिसा के अमर उदाहरण भी है जिसके सहारे राम, कृष्ण, गौतम भगवान महावीर, गाधी, गुरु नानक और ईसा मसीह मानव जाति के चिरकाल तक पूज्य बन गए।

जगराव के पश्चात् आप ने अपना आगामी चातुर्मास पजाब प्रान्त मे मण्डी अहमदगढ मे स्वीकार किया। अपने इस चातुर्मास काल मे आपने शिक्षा और समाज मे कुछ नए प्रयोग किए। शिक्षको और शिक्षार्थियो के लिए उन्होने चितन और कर्तृव के नए आयाम उद्घाटित किए। उन्होने स्त्री-शिक्षा पर अधिक बल दिया। उन्होने कहा कि जब तक पुरुष के समानान्तर स्त्रियो को भी शिक्षा, समाज और सस्कृति के निर्माण मे सहयोगी नही बनाया जाता तब तक स्वस्थ समाज की रचना नही की जा सकती। अनादि काल से नारी पुरुष की दासता का शिकार रही है और इस दासता के दौरान अनेक प्रकार की कुरीतियो और बुराइयो की जकड मे आ गई। परिणाम यह हुआ कि चारो ओर का वातावरण कुठापूर्ण और घुटनभरा सिद्ध हुआ। नारी को इस दुर्दैव के पक से निकाल कर उसे पुन प्रतिष्ठित करना है। आपकी विचारधारा का यहाँ की सामान्य जनता और अनुयायियो मे बहुत स्वागत हुआ। परिणाम यह हुआ कि अनेक बालिकाओ, युवतियो और यहाँ तक कि प्रौढाओ ने भी आप के निर्देशन मे शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया। समय-समय पर महिलाओ की सभायें भी होने लगी। इन मे सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक और राष्ट्रीय समस्याओ पर विचार-विमर्श होने लगा।

मडी अहमदगढ के चातुर्मास काल की सबसे बडी उपलब्धि आपको एक गुरु-भाई की प्राप्ति है। एक ऐसा गुरु भाई जो लक्ष्मण की तरह अपनी सारी आकांक्षाओ और मनोकामनाओ का बलिदान कर के आपके पीछे लक्ष्मण की तरह चल पड़ा और तब से

लेकर आज तक कोई २८ वर्ष बीत चुके है, प्रत्येक दुख-सुख मे आपके साथ रहा। जिसने अपने सारे अस्तित्व को आपके ही अस्तित्व मे विलीन कर दिया, जिसने पीडा को तो अपने लिये चुना और सुख आपके लिये मुहैया किया। ऐसे त्यागी, शांत, तपस्वी और गम्भीर सत श्री सुभाग मुनि जी महाराज को कौन नही जानता ? मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज का भी श्री सुभाग मुनि जी के प्रति अनन्य प्रेम है। भ्रातृ-प्रेम की परीक्षा का समय भी ठीक उसी प्रकार आया जिस प्रकार लक्ष्मण को शक्ति बाण लगने पर हुआ था। सन् १९७० की घटना है। श्री सुभाग मुनि जी महाराज को दिल का दौरा पड़ा, आप बेहोश पडे थे। जब श्री सुशील मुनि जी महाराज को यह पता लगा तो भागे-भागे आये और दिन के दो बजे स्वय उन्हे अस्पताल ले गए। मुनिश्री सुशील कुमार जी के लिए यह बहुत ही वेदना और चिंता के क्षण थे। आप के दृढ सकल्प की सराहना किन शब्दो मे की जाए। ध्यान लगा कर बैठे गए और निरन्तर तब तक बैठे रहे जब तक आपको यह प्रतीति न हो गई कि श्री सुभाग मुनि जी महाराज का बाल भी बाका न होगा। ध्यान से उठे और सुभाग मुनि जी के सिर पर हाथ रख कर बोले, "चिन्ता की कोई बात नही। तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे।" फिर अनवरत रूप से जब तक मुनि जी अस्पताल मे रहे, आपने प्राणपण से सेवा, शुश्रूषा की।

सन् १९४५ मे जब आकाश से युद्ध के काले बादल छटने लगे थे, विश्व के राष्ट्रो ने आपस मे मिल-बैठ कर झगडो को सुलझाने के लिए लीग आफ नेशन्ज के स्थान पर सयुक्त राष्ट्र सघ की स्थापना कर ली थी और विश्व-शांति की किरणे फूटने लगी थी, तभी मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने अहमदगढ मडी का अपना चातुर्मास काल समाप्त कर लुधियाना के लिए प्रस्थान किया। विश्व की दुर्दशा देख कर आपके मन मे भारी उथल-पुथल मची हुई थी कि क्या आज हमारा कर्तव्य नही है कि भूले-भटके लोगो को सही रास्ते पर लाने के लिए खुले मच पर आकर जनता का आह्वान करे। यह उस समय की बात है जब जैन समाज और जैन साधु-सत पुरानी लकीर के फकीर बने हुए, पुरानी परिपाटियो को पकडे हुए थे और विज्ञान की अद्‌भुत चमत्कारी शक्तियो का शातिपूर्ण उपयोग करने मे भी पाप समझते थे। यहाँ एक छोटी-सी घटना का उल्लेख आवश्यक होगा। आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज का पदवीदान महोत्सव मनाया जा रहा था। आचार्य श्री जी को चादर ओढाये जाने के पावन समारोह मे भाग लेने के लिए अनेक साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाए उपस्थित थे। ऐसे भव्य और विशाल समारोह मे युवा हृदय मुनि श्री सुशील कुमार जी उठे और बोलने के लिए माइक्रोफोन की ओर बढे। फिर क्या था, चारो ओर के वातावरण मे जैसे कोलाहाल का तूफान आ गया। क्या साधु, क्या जनता सब मे खलबली मच गई। सब ने एक स्वर से मुनि जी के इस कार्य की आलोचना की और कहा कि साधु को यह शोभा नही देता कि वह विद्युत् यत्रो का उपयोग करे। परन्तु आपका तो मार्ग ही और था। न तो आप किसी सकुचित दृष्टिकोण से समझौता करने वाले थे और न ही झूठ आडबरो की आड मे काम करने वाले थे। आप के विचार क्रांतिकारी थे। एक ओर जब आप बोलने को तत्पर हुए तो दूसरी ओर आप से माइक तक छीनने का असफल प्रयास किया गया। आपने सिंह गर्जना करते हुए कहा-'जैन

धर्म कोई सकुचित विचारधारा वाला धर्म नही है। इसका हृदय बहुत विशाल है। पर दु.ख तो इस बात का है कि आज इसी धर्म को कुछ रूढिवादी और पुरातन पथी लोग तथा अन्ध विश्वास पर चलने वाले लोगो ने एक चार-दीवारी मे बद कर सीमिति कर दिया है। जो धर्म मानव मात्र को एकता का सदेश देता है, जिसकी उत्पत्ति पाखडो को मिटाने और भूली-भटकी जनता को सही मार्ग दिखाने के लिए हुई, क्या यही वह धर्म है जिसके ठेकेदार मात्र उसे कुछ लोगो की बपौती बनाकर रखना चाहते है ? आपने उपस्थित जनता, विशेष कर युवको और बुद्धिजीवी वर्ग का आह्वान किया और कहा कि आवश्यकता इस बात की है कि खुल कर हम बन्द कमरो से बाहर निकलें और खुले वातावरण मे ठडे दिमाग से विचार-विमर्श कर निर्णय ले और विश्व को बतायें कि जैन धर्म क्या है, इसके सिद्धान्त क्या है। तभी हम भगवान् महावीर द्वारा बताय हुए सही मार्ग पर चल सकेंगे। अन्यथा हमारे लिये कोई माग नही है। प्यारे भाइयो, यह एक ऐसा धर्म है जिसे कोई भी स्वीकार कर सन्मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा लेकर अपने जीवन का कल्याण कर सकता है। सच कहा जाये तो यह वास्तविकता है कि ससार का कोई भी धर्म, किसी जाति विशेष का धर्म नही बनता। सब मे अच्छाइया है। धर्म में बुराइया पैदा करने वाले वे लोग है जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये धर्म और धर्म के बीच दीवारें खडी कर देते है वरना आप ही बताइए, ससार का कौन-सा ऐसा धर्म है जिसने हिसा का पाठ पढाया हो, विद्वेष की भावना फैलाने की बात कही हो, असहायो की सेवा करने से रोका हो।" इस ओजस्वी भाषण को सुनकर सभी दग रह गए। जगह-जगह चर्चाए हुई। गृहस्थ वर्ग मे ही नही अपितु साधु-साध्वी वर्ग मे भी भिन्न-भिन्न प्रकार के मत प्रकट किए गए। जितने मुह उतनी बातें। किसी ने कहा, भाषण बहुत क्रातिकारी तथा सत्य पर आधारित है, तो किसी ने कहा कि ऐसी बातें साधु को मच पर नही कहनी चाहिए। सन्तों मे बहुतो ने तो इसका खुला विरोध किया। धीरे-धीरे अधिकाश मत आपके पक्ष मे होते गए। बहुत से गृहस्थो ने आपको आदर दिया तथा भविष्य की आशा के रूप मे देखा। अन्त मे वही हुआ जिसकी आशा थी। जिस लाउड स्पीकर के प्रयोग को लेकर आपका इतना विरोध किया गया उसी का प्रयोग आज प्रत्येक साधु-साध्वी कर रहा है। आप ही पहले साधु थे जिसने अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की परवाह किए बिना लाउड स्पीकर का प्रयोग किया था। इसके बाद तो क्रमश आपने अनेक क्रातिकारी कदम उठाये। अहिसा का बिगुल एक बार फिर चारो दिशाओ मे बज उठा और छोटे से लेकर बडे-बडे राजपुरुष तक आपकी सेवा मे आने लगे तथा आपसे मार्गदर्शन पाने की अभिलाषा प्रकट की, जिसका वणन आगे आने वाले अध्यायो मे किया जाएगा।

क्रातिकारी की यह नियति होती है कि चाहे वह धर्म का मार्ग अपनाये अथवा राजनीति का, समाज को अपना कार्यक्षेत्र बनाये अथवा परम्पराओ मे सुधार का बीडा उठाये, उसे प्रत्येक कदम पर कठिनाइयो का सामना करना पडता है। पग-पग पर मुसीबतें अपना मुह बाये उसके सारे अस्तित्व को निगल जाने के लिये खडी रहती है। धार्मिक क्राति का मार्ग क्राति के प्राय सभी मार्गों से दुलभ और कटकाकीर्ण है। जब कभी मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज से उनके जीवन-दर्शन के सम्बन्ध मे चर्चा हुई तो उन्होंने सहज भाव से कहा कि मेरा एक ही मिशन है, खतरे लो और जिओ। सच कहा जाये तो उनके

जीवन-पथ का निर्माण तरह-तरह के खतरो से ही हुआ है। वे प्राय यह कहते हुये सुने जाते हैं— जिस दिन मेरे मार्ग की कठिनाइयां समाप्त हो जायेंगी उस दिन शायद अगली सास लेनी कठिन हो जायेगी। इस सदर्भ मे श्री अरविन्द की 'निर्मत्रण' कविता का यदि उदाहरण दिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी ।—

ऊंचे पर्वत शिखर और घनघोर गगन का गर्जन
मेरा मार्ग भरा है अगणित जलनिधि लोल लहर से
ऊंचे नीचे और कंटकों से निर्मित है काया जिसकी
वही आज मन्तव्य हमारा जहाँ खड़े आराध्य हमारे ॥

अपने विचारो की सही अभिव्यक्ति के लिये मुनिश्री सुशील कुमार जी ने लेख और कविता को अपना माध्यम बनाया। अनेक विद्यार्थी, प्राध्यापक और विद्वान् आपके सम्पर्क मे आए। आपने 'परीक्षा' नामक पत्रिका भी निकाली, जिसमे विद्यार्थी वर्ग को सही मार्गदर्शन और मानवीय तथा सामाजिक मूल्यो का यथार्थपरक विवरण होता था। अनेक प्रकार के विरोधी विचारो, आरोपो और विवादो को आप ने अपनी सूझ-बूझ से सुलझाया। आपकी प्रतिभा पर टिप्पणी करते हुए महान शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर हसराज जी ने कहा था कि मुनिजी जैसे होनहार और मेधावी विद्यार्थी मैंने अपने जीवन मे बहुत कम देखे है। दिन भर नाना प्रकार के कार्यों मे व्यस्त रहते हुये भी आप परीक्षा मे सम्मिलत होते तो अन्य विद्यार्थियो मे सदा आगे रहते। प्रोफेसर हसराज जी आश्चर्य मे पड जाते कि न जाने मुनि जी मे कौन-सी शक्ति है। एक दिन आप ने मुनि जी से पूछ ही लिया। उन्होने बडी विनम्रता मे उत्तर दिया कि प्रोफेसर साहब, यह सब गुरु-कृपा का फल है। अन्यथा मैं किसी योग्य नही हूँ। एक कहावत है कि जब विश्व सोता रहता है तब क्रांतिकारी परिश्रम करने मे रत होते हैं। पर कभी अभिमान नही करते। मानव-मात्र की भलाई की चिन्ता मे सदैव लगे रहते हैं। क्या यह उक्ति मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज के सम्बन्ध मे पूर्णतया चरितार्थ नही होती ? आप ने उसी समय 'प्रभाकर' तथा 'साहित्य रत्न' की परीक्षाए सफलतापूर्वक उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आपने साधु जीवन की मर्यादाओ का सम्यक्रूपेण पालन करते हुए चातुर्मास समाप्त होने पर लुधियाना से विहार कर दिया।

उस समय भारतवर्ष पर कहर के बादल मडरा रहे थे। देश का विभाजन एक प्रकार से निश्चित-सा हो गया था। ऐसे समय मे आप मोगा शहर मे पधारे। सन् १९४५ का चातुर्मास वही हुआ। यह वह भयकर समय था जब हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे थे। जो कल के पडोसी थे वे आज आपस मे शत्रु बन गये थे। लाखो लोगो का खून पानी की तरह बहाया गया। लाखो माताओ और बहनो के सुहाग मिटाये गये। एक आदमी ने दूसरे के खून से होली खेली। विश्वास नही होता कि मनुष्य इतना नीचे गिर जायेगा कि उसे अपनी मनुष्यता का ही भान न हो। वर्तमान पीढी ने अपनी ही आखो से इस दुखांत दृश्य को देखा है। फकीरो, औलियो, ऋषियो और सन्तो की भूमि भारतवर्ष मे इस दानवीय लीला का साक्षात्कार किया। इस कारुणिक दृश्य को देखकर मुनिश्री सुशील कुमार जी का हृदय पीडित रहा। आप के कानो मे आवाज गूंजने लगी। यह सब धर्म की देन है। उस धर्म की, जिसे भूखे भेडियो ने मानवता के दुश्मन स्वार्थी मनुष्य ने झूठ, छल और बेईमानी की चादर

औढ़ा दी है। कोई हिंदुत्व के नाम पर लड रहा है तो कोई इस्लाम की आड लेकर मानवता का खून बहा रहा है। कोई कैथोलिक बनकर जुल्म ढाता है तो कोई प्रोटेस्टेंट बन कर विश्व पर छा जाना चाहता है। इस लिए अब उन दीवारो को तोडना होगा, जो धर्म के नाम पर मानव के बीच हिंसा और द्वेष पर खडी की गई हैं। धर्म का ध्येय सत्य, शिव और सुन्दर रहा है। इस मे पारस्परिक द्वेष या लडाई-झगडे के लिए कोई स्थान नही। केवल प्यार, केवल समपर्ण, अपने से प्यार, दूसरो से प्यार, सब से प्यार ही प्यार, वह भी सच्चा प्यार जो लेता कुछ नही सब कुछ देता ही देता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वाटिका मे खिला हुआ फूल जो बिना किसी भेदभाव के अपनी सुगध सब पर लुटाता है और सब को आनदित तथा प्रफुल्लित करता है किन्तु बदले मे कुछ नही चाहता। ठीक उसी प्रकार धर्म भी एक खिला हुआ फूल है, जो चाहे जितना इस की सुगध से विभोर हो जाये। इस कोमल फूल की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है, फिर जितना चाहे हम उसमे सुगधि प्राप्त कर के अपने जीवन का कल्याण करें।

आवाज अर्थपूर्ण थी। सचमुच जैसे कोई दैवी शक्ति आपके भीतर प्रकट हो गई हो। मुनि जी ने निर्णय किया, चाहे कुछ भी हो जाए, अब तो इन बेडियो को काटना ही होगा।

उस समय मुनि जी जिस भवन मे ठहरे हुए थे वह घनी बस्ती के कुछ ही दूरी पर स्थित था। अत खतरे के कारण प्रेमी भक्त जनो ने आपसे प्रार्थना की कि समय बहुत खतरनाक है। चारो ओर साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण दु खदायी घटनाये हो रही थी। हो सकता है कि कोई विधर्मी आपपर भी आकर हमला कर दे। मुनि जी सुनकर हँसे और कहने लगे कि प्यारे भाइयो, हमारा लक्ष्य तो धर्म के मार्ग पर चलकर अपने कर्तव्य का पालन करना है। धर्म खतरो को बढाता नही बल्कि कम करता है। यदि हम, जिन्हे धर्म का नायक कहा जाता है, भयभीत हो जायें तो उनका क्या होगा, जो धर्म को समझते तक नही ? दूसरी बात यह है कि भय को धर्म के विरुद्ध माना गया है। आपने भगवान् महावीर की वाणी का स्मरण करते हुए यह बताया कि जो कोई भी इस लोक या परलोक का भय करता है वह कभी सच्चे अर्थों मे धर्म-मार्ग पर अग्रसर नही हो सकता। आपने भी भगवान् की वाणी का अनुसरण करते हुए उसी भाव मे रहने का निश्चय करके साधु-जीवन की मर्यादा का पूर्णतया पालन किया। 'जहाँ प्यार होता है वहाँ मार्ग स्वय ही बन जाता है' की उक्ति के अनुसार वहाँ पर भी एक घटना घटित हुई, जिससे अवगत कराना अत्यावश्यक है। जब भारत साम्प्रदायिकता के विषैले वातावरण मे से गुजर रहा था और भारत सरकार ने स्थिति पर काबू पाने के लिये स्थान-स्थान पर सेना तैनात कर रखी थी, उन्ही दिनो मुनि सुशील कुमार जी अपने गुरु भाई श्री सुभाग मुनि जी के साथ जा रहे थे कि रास्ते मे एक सैनिक मिला। उसने मुनि जी को रोककर पूछा कि आपके कधे पर क्या रखा है ? मुनि जी ने विनोद मे कहा, "यह हमारी तोप है।" सैनिक चौकन्ना हो गया और आश्चर्य-भरे स्वर मे बोला कि आपके पास तोप कहाँ से आई ? यह तो केवल सरकारी सैनिको के पास ही हो सकती है। आप कौन है ? क्या करते है ? कहाँ से आए है, कहाँ जा रहे हैं ? आदि कई प्रश्न एक साथ ही पूछ डाले। उसकी जिज्ञासा को शात करते हुए मुनि जी ने उसे विस्तार मे समझाया कि भाई जिस प्रकार तुम सैनिक हो उसी प्रकार हम भी सैनिक है। अन्तर केवल इतना ही है कि तुम लोग

बाहर के शत्रुओं से रक्षा करते हो और हम लोग भीतर के शत्रुओं से। बोलो हम दोनों सैनिक हुए कि नही ? सैनिक जो अब तक कौतूहलवश भ्रम मे पडा हुआ था, मुनि जी की बात सुनकर शात हुआ और उनकी सादगी और मधुर व्यवहार से इतना प्रभावित हुआ कि उसने जैन सतो के जीवन उद्देश्य तथा दिनचर्या के विषय मे विस्तार से जानकारी प्राप्त की। वह मुनि जी के व्यक्तित्व और स्पष्टवादिता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने वापस जाकर अपने शिविर मे भी मुनिजी और उपरोक्त घटना के सम्बन्ध मे चर्चा की। फिर क्या था। सारे शिविर मे मुनि जी के बारे मे उत्सुकता बढ गई। सबने मिलकर मुनिजी को शिविर मे ही आमन्त्रित करने का निश्चय किया और तदनुसार प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर मुनि जी सहर्ष सैनिक शिविर मे पधारे और वहाँ प्रवचन किया। उनके प्रवचन से सैनिक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मुनि जी से प्रतिदिन शिविर मे पधारने का निवेदन किया। इस प्रकार लगातार कई दिनो तक आपके प्रेरणादायी प्रवचन सैनिक शिविर मे हुए।

इसी शिविर के सामने बलोच रेजीमेट की एक टुकडी का भी शिविर था। जब उस टुकडी मे यह समाचार पहुँचा तो उसके वरिष्ठ सैनिक अधिकारी मुनि जी से बातचीत करने आये। उसके हृदय पर मुनिजी की बातो का इतना अधिक प्रभाव पडा कि उसकी आँखो मे आसू आ गए। इसी स्थिति मे वह बोला कि महाराज ! यदि आप जैसे ही विचार हमारे राष्ट्र के राष्ट्रनायको के हृदय मे होते तो कभी देश का विभाजन और विनाश की यह लीला दिखाई न देती। वह लौट गया। शिविर उठ गये। किन्तु मुनि जी के हृदय पर दुःख की पीडा की एक गहरी छाप छोड गये।

मोगा की ही एक घटना है कि एक सज्जन जो वकालत करते थे, बहुत ही नास्तिक विचारो के थे। एक बार वे बीमार पड गए। बहुत दवा कराई किन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। उनका भाई आकर मुनि जी से प्रार्थना करने लगा कि यदि वे चाहे तो उसके भाई का कल्याण कर सकते है। मुनिश्री जी ने कहा, "जाओ दवा करो, समयानुसार वह स्वय ठीक हो जायेगा।' किन्तु मुनि जी की बातो से उसे सन्तोष नही हुआ। वह बहुत अनुनय-विनय करने लगा। और यह भी बताया कि वकील साहब लम्बी बीमारी के कारण चिड-चिडे स्वभाव के हो गये है। पहले नास्तिक तो थे ही, अब जो भी उनके पास जाता है और उनकी भलाई की कोई बात करता है तो वे उसे पत्थर मारते है। मुनि जी को यह वृत्तान्त सुनकर दया आ गई और आपने उसके पास जाना स्वीकार कर लिया। जब वह वहा पहुँचे तो देखा कि वकील साहब लेटे हुए हैं। साथ ही एक मेज रखी है, जिस पर पत्थर के छोटे-छोटे टुकडे पडे है। मुनि जी ने पहले तो वकील साहब के दुःख और कष्ट के बारे मे पूछा। फिर बोले—"भाई साहब, यह पत्थर आपने क्यो रखे है ?" उसने उत्तर दिया, "जो मेरा कहना नही मानता मै उसे पत्थर मारता हूँ। दण्ड देता हूँ। मैं धर्म-कर्म नही मानता, आप जाइए मैं ठीक नही हो सकता। लोग मुझे तग करते है, गाली देते है। जब मुझे क्रोध आता है, पत्थर मार कर बदला लेता हू।" मुनि जी ने बडे प्रेम से उसे समझाया, "एक काम करोगे।" वह बोला, "क्या।" मुनि जी ने बताया कि यदि कोई तुम्हारी भलाई करे तो तुम उसको अपना हितैषी समझोगे, तो उसने कहा कि हा। मुनिजी ने कहा, "जिस प्रकार तुम्हे यदि कोई गाली देता है

तो तुम पर उसका बुरा प्रभाव पडता है और तुम गुस्से मे आकर उससे बदला लेने को तत्पर हो जाते हो। ठीक उसी प्रकार यदि कोई तुम्हारे भले की बात करे तो तुम पर अच्छा असर होता है। देखो, हम तुम्हे एक मत्र बताते है। इस मत्र मे बडी शक्ति है। यदि तुम इसका जप नित्य प्रति आस्था और विश्वासपूर्वक करोगे तो यह मत्र भी तुम्हारी भलाई करेगा और तुम स्वस्थ हो जाओगे। उसने कहा कि मैं मत्र आदि को तो मानता नही, पर यदि आप कहते हैं तो जप करूँगा।"

न जाने मुनि जी की बातो मे शक्ति थी या नमोकार मत्र का प्रभाव था कि वह वकील धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा और एक दिन जब मुनि जी बाजार से निकल रहे थे तो एक व्यक्ति आकर उनके चरणो मे गिर गया। यह सज्जन कोई और नही, वही वकील साहब थे जो मुनि जी से कह रहे थे कि महाराज अब मै स्वस्थ हो गया हूँ। यह आप की कृपा और आशीर्वाद तथा मत्र की चमत्कारिक शक्ति का ही परिणाम है। अब वह नास्तिक नही एक आस्तिक व्यक्ति था। जिसके मन मे धर्म और मतो के प्रति अगाध श्रद्धा तथा प्रेम उत्पन्न हो चुका था।

●

महत्संकल्प

चातुर्मास पूर्ण होने पर आपने लुधियाना की ओर विहार किया। अभी रायकोट ही पहुँचे थे कि आप रोगग्रस्त हो गए। अभी आप रोगग्रस्त ही थे कि एक हृदय विदारक सवाद आपके कानो मे पडा। युग पुरुष अहिसा और सत्य के सच्चे आराधक महात्मा गाधी की गोली मार कर हत्या कर दी गई है। एक ज्योति सहसा बुझ गई थी। मानवता अनाथ हो गई थी। एक सन्त वह था, जो अहिंसा की वेदी पर बलिदान हो चुका था और दूसरा सन्त मुनि सुशील कुमार, जिसने सन् १६४२ का जोश देखा। निहत्थे लोगो को साम्राज्यवादी महाशक्तियो से लोहा लेते देखा और फिर विश्व-युद्ध की भयकर आग मे झोकी जाती मानवता को देखा। राष्ट्र का विभाजन और निरीह लोगो को मौत का शिकार होते देखा। और कर्णभेदी चीखो के बीच खून की बहती नदिया देखी। चारो ओर अराजकता, लूटमार। जिस प्रकार सम्राट् अशोक ने कलिग के युद्ध मे विजय प्राप्त की और युद्ध क्षेत्र मे जाकर विजित क्षेत्र का जब अवलोकन किया तो उसकी आँखे खुली की खुली रह गई। उस वीभत्स दृश्य मे यदि कुछ दिखाई देता था तो केवल धूए के बादल, विनाश का ताडव नृत्य, लाखो शव, हजारो अधमरे लोगो का क्रन्दन, चीख और पुकार से सम्राट् का हृदय द्रवित हो उठा था। उसे अपने कृत्य पर ग्लानि होने लगी। तभी उसने निश्चय किया कि मुझे राजपाट नही चाहिए। यह मै क्या कर बैठा हू। ससार से उसे विरक्ति हो गई और तत्काल उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। वह जीवन भर के लिए सत्य पर चलने का दृढ सकल्प मन मे कर के साधु हो गया। मुनि जी ने अशोक की तरह किसी क्रूरतापूर्ण कार्य मे भाग नही लिया था किन्तु वह हृदयविदारक दृश्य अवश्य देखा। उसी समय मुनिश्री ने सकल्प लिया कि मजहब, भाषा, प्रान्त और राष्ट्र के नाम पर जब तक हिंसा होती रहेगी, मैं चैन से न बैठकर विश्व मे शांति और अहिसा की स्थापना के लिए भगीरथ प्रयत्न करूगा। प्रेम और मैत्री का सदेश जन-जन तक पहुँचाऊँगा और प्रयास

करूंगा कि मानव-समाज अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त कर सके। तब से आज तक मुनि जी अपने इसी सकल्प की पूर्ति मे लगे हुए है।

स्वस्थ होने पर आप लुधियाना पधारे। वहा पर आप के आगमन से एक बार फिर धूम मच गई। आपने भी अपने उद्‌देश्य की सफलता के लिए कोई कसर उठा न रखी। और एक पत्रिका "हिन्दी साहित्य" का सपादन-सचालन प्रारम्भ किया। और धार्मिक शिक्षा के द्वारा लोगो को अपने कर्तव्य का बोध कराने लगे। पहले की अपेक्षा आपके विचार अधिक गम्भीर, सक्रिय और प्रभावशाली थे। जनता मे इस पत्रिका का बहुत स्वागत हुआ। युवा लेखन और कथन को भी प्रोत्साहन मिला। चातुर्मास समाप्त होने को ही था कि मडी अहमदगढ से गुरुदेव पूज्य श्री कुन्दन लाल जी महाराज का सदेश मिला कि चातुर्मास समाप्त होते ही मडी अहमदगढ आ जाओ।

लुधियाना का चातुर्मास समाप्त कर आप मडी अहमदगढ पधारे। तत्र विराजित मुनिश्री कुदन लाल जी महाराज ने कहा कि हम तुम्हारे हृदय की भावनाओ को समझते है और यह भी जानते है कि तुम्हारे दिल मे विश्व कल्याण की उत्कट अभिलाषा विद्यमान है। पर इस के लिए तुम्हे अपने को पूरी तरह तैयार करना होगा। अपने ज्ञान की वृद्धि करनी होगी। याद रखो, तुम्हे अनेक बाधाओ और विरोधो का सामना करना होगा। धर्मयुद्ध लडने होगे। जब तक तुम स्वय मजबूत नही हो जाओगे, सभवत तुम वह सफलता प्राप्त नही कर सकते, जिसकी तुम कल्पना करते हो। सफल सेनापति वही होता है जो समय को पहचानता है। समय को देख कर वह जितने उत्साह से आगे बढता है समय आने पर उतने ही उत्साह से पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष इतिहास का निर्माता होता है और इतिहास उसके नाम पर फूलो की वर्षा करता है।

मुनिश्री कुन्दन लाल जी महाराज की वाणी सारगर्भित थी, जिसका मुनि जी पर तत्काल प्रभाव पडा। उसी समय उन्होने निश्चय कर लिया कि जब तक गुरुदेव स्वय आज्ञा नही देते तब तक चाहे जितना समय लगे उनके सान्निध्य म ही रहेगे। इस प्रकार लगातार तीन वर्ष तक चरणो मे रह कर आपने विभिन्न धमग्रन्थो का गहन अध्ययन किया और संसार के अलग-अलग धर्मों के प्रति ज्ञान प्राप्त किया। इसके साथ ही आपने वही पर रहते हुए प्रभाकर, साहित्यरत्न और विद्यारत्न सफलतापूर्वक उत्तीर्ण किए।

पूज्य श्री कुन्दन लाल जी महाराज का स्वास्थ्य उन दिनो सहसा गिरने लगा। मुनि जी ने अपने गुर भाई श्री सुभाग मुनि जी के साथ दिन-रात करके उनकी बडी सेवा की। एक-एक घन्टे बारी-बारी से जागकर सेवा मे लगे रहे। पर होनहार को कौन टाल सकता है। एक दिन श्री सघ को बुलाकर मुनिश्री कुदन लाल जी महाराज ने कहा कि भाइयो, अब मैं इस ससार से विदा लेने वाला हूँ। यदि किसी को मेरे कारण कोई कष्ट या पीडा हुई हो तो उसे भूल जाए। बडा ही हृदय-विदारक दृश्य था। उन्होने मुनिश्री छोटेलाल जी महाराज, मुनिश्री सुशील कुमार जी तथा श्री सुभाग मुनि जी के सिर पर हाथ रखा और शिक्षा दी कि अपने सयमी जीवन का पूर्ण ध्यान रखना और धार्मिक मर्यादाओ मे रहते हुये अहिसा और प्रेम का प्रचार करना तथा भगवान् महावीर की वाणी मे श्रद्धा रखना और उसका प्रचार विश्व भर मे करना। फिर आपने शात भाव से सब की ओर देखा

और कहा कि मुझे नमोकार मंत्र सुनाओ। सब ने महामन्त्र नमोकार का पाठ आरम्भ कर दिया। सब के नेत्रो मे अश्रु भर आए। इतने मे एकाएक आकाश मे बादल उमड पडे और देखते-देखते ही बडी-बडी बूदे पडने लगी। एक बूद खिडकी मे से आकर श्री कुदन लाल जी महाराज के सिर के मध्य मे इस प्रकार पडी मानो वह महायोगी के ससर्ग से धन्य हो जाना चाहती हो। सहसा महाराज जी का मुख खुल गया और उनके प्राण पखेरू उड गये। आत्मा स्वर्ग लोक सिधार गई और मृत देह पडी रही। सारे नगर मे बिजली की दौड की तरह यह दुखद समाचार फैल गया। मुनिश्री के पार्थिव शरीर का दर्शन करने के लिये और दिवगत आत्मा को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिये अपार जन-समूह उमड पडा। श्री कुदनलाल जी महाराज का पार्थिव शरीर ऐसा लग रहा था जैसे वह विश्राम कर रहे हो। दूसरे दिन उनकी शवयात्रा आरम्भ हुई। एक बार फिर आकाश मे बादल छा गए और मूसलाधार वर्षा होने लगी। लगता था कि शवयात्रा मे विघ्न पडेगा। तभी मुनिश्री सुशील कुमार जी के पूछने पर गुरुदेव श्री छोटे लाल जी महाराज ने फरमाया कि चिता की कोई बात नही। यह केवल पाच मिनट का खेल है। देवलोक मे खुशिया मनाई जा रही है। ठीक पाच मिनट बाद वर्षा रुक गई और ठडी हवाओ के चलने से वातावरण शात हो गया। शवयात्रा के समाप्त होते ही शव को चदन की चिता पर रख कर अग्नि को समर्पित कर दिया गया।

अब गुरुदेव की आज्ञा हुई कि सब लोगो को वहा से विहार कर देना चाहिये क्योकि एक ही स्थान पर बिना किसी विशेष प्रयोजन के अधिक दिनो तक ठहरना शास्त्रीय नियम के विरुद्ध है। जनता के बहुत आग्रह करने पर भी गुरुदेव सहित मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज और श्री सुभाग मुनि जी महाराज ने प्रस्थान किया और जगराव पहुँचे। सभवत कम लोगो को यह ज्ञात होगा कि भारतीय स्वतत्रता सग्राम के अमर सेनानी लाला लाजपत राय के चाचा जी ने मुनि जी के दादा गुरु के पास आ कर जैन धर्म के अनुसार दीक्षा लेकर साधु जीवन अगीकार किया था। आज भी उनका परिवार मुनि जी को बडे आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता है।

उस समय वहा पर श्री विमल मुनि जी महाराज भी विराजमान थे। जगराव के श्री सघ ने प्रार्थना की कि मुनि जी का प्रवचन होना चाहिये। किंतु आपने श्री कुदन लाल जी महाराज के स्वर्गवास के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकार न की। आग्रह बढता ही गया। अन्तत आप को जनता की भावनाओ का आदर करना ही पडा। और आप नित्यप्रति धर्म सदेश देने लगे। जनता आप के भाषणो को मत्रमुग्ध हो कर सुनती थी। इसी बीच आप ने जीरा (पजाब) की ओर विहार कर दिया। वहा पर भी आपके भाषणो की धूम मच गई। वही आपको तपस्वी श्री तारा चन्द जी महाराज के दर्शन करने का सुअवसर मिला। मुनिश्री ताराचन्द जी महाराज बडे ही सरल और हसमुख प्रकृति के सत थे। जो भी आपके सान्निध्य मे आता था, आपसे प्रभावित हुए बिना नही रहता था। उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। उनकी अमृतमयी वाणी के मानसरोवर मे अवगाहन कर न जाने कितनो ने हसगति को प्राप्त किया।

●

सादड़ी सम्मेलन

इसी बीच आप को सादडी साधु सम्मेलन मे सम्मिलित होने का निमत्रण मिला। साधु वर्ग ने मिलकर निर्णय किया कि एक ऐसा सम्मेलन आयोजित किया जाये जिसमे सभी साधु और साध्विया एकत्र होकर बदलते युग की धारा के साथ अपने सिद्धातो और विधि-विधान मे परिवर्तन करे। इसके लिये निश्चित किया गया कि सब साधु और साध्विया राजस्थान के सादडी नामक स्थान पर एकत्र हो। सम्मेलन बहुत महत्वपूर्ण था। ऐसे समेलन मे सम्मिलित हो कर सक्रिय भाग लेना मुनिश्री सुशील कुमार जी महाराज जैसे प्रतिभाशाली सन्त के लिए अत्यावश्यक था। आप ने निर्णय किया कि वहाँ पर समाज के सुधार का प्रश्न हो, सरक्षण, सगठन और एकता पर विचार किया जाये। जनता और आयोजको का भी अनुरोध था कि यदि आप सम्मेलन मे सम्मिलित हो तो निश्चित रूप से समाज कल्याण मे सहायता मिलेगी। अपनी योजनानुसार आप ने सादडी सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान कर दिया और एक लम्बी यात्रा पर चल पडे। सम्मेलन का सस्मरण मुनि जी के अपने शब्दो मे इस प्रकार है —

सचमुच आज से भारत के इतिहास मे यह एक नया अध्याय जुड गया, जबकि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो मे बटी हुई सारी स्थानकवासी साधु सस्था एक आचार्य के नियन्त्रण मे सगठित हो गई और समस्त इकाइयो और बिखरी हुई आचार्य परम्पराओ ने अपनी समस्त पुरातन पदविया व उपाधिया त्याग कर एक सर्वसम्मत नवीन विधान तैयार कर लिया। इस महान् कार्य के सम्पादन के लिए भारत भर की सम्प्रदायो से प्रतिनिधि मागे गए थे। जिनमे से दो-चार को छोड कर २२ सम्प्रदायो के प्रतिनिधि ५२ की सख्या मे एकत्रित भी हुए थे। श्वे० स्था० जैन कान्फरेन्स ने क्या-क्या प्रयत्न किये और दूसरे हिताकाक्षी वर्ग ने क्या-क्या कष्ट सहन कर इसे पूर्ण करने का भगीरथ प्रयास किया यह सब सम्मेलन की पृष्ठभूमि मे छिपा हुआ है। मैं तो आप को केवल सम्मेलन के कुछ अदरूनी संस्मरण ही बताऊँगा। वास्तव मे यही कुछ तो उसका जीवन है।

साधु नियोजन समिति की विनती स्वीकार कर के साधुवर्ग का प्रतिनिधि बन कर सादडी सम्मेलन की ओर चल पडा। इन पंक्तियों के लेखक को भी ७०० मील का मार्ग तय करना पडा। प्रसन्नता की बात तो यह है कि हम उसी दिन ठीक ६ बजे सम्मेलन की प्रारम्भिक कार्यवाही के समय पहुँच गए थे।

जनता के कोलाहल मे मागलिक स्तवन और कीर्तन का उद्घोषण हुआ किन्तु सुना कुछ नहीं। अव्यवस्था के अभिशाप ने बदला ले ही लिया और १५ मिनट मे कार्यवाही चला कर सब उठ गए। पहली सभा समाप्त हुई। दोपहर के समय समस्त साधुवर्ग की सभा हुई और सम्मेलन के मुहूर्त की गरमा-गरम चर्चा हुई। किसी ने कहा कि मुहूर्त ठीक नही। जोधपुर मे एक ज्योतिषी द्वारा प्रकाशित पैम्फलेट दिखाया गया जिसमे लिखा था कि सम्मेलन यदि इस मुहूर्त (रविवार, अक्षय तृतीया) मे किया गया तो अवश्य असफल होगा। किन्तु अन्त मे मेरा यह समर्थन जोरदार स्वर मे स्वीकार किया गया

रविवार, अक्षय तृतीया (भगवान् ऋषभदेव ने एक वर्ष बाद पारणा किया, इक्षु तृतीया भी इसे कहते है) चन्द्रमा वृष का, सूर्य मेष का, अधिक ग्रह उदय हैं। अत आज का मुहूर्त मानने मे कोई आपत्ति नही, सिवाय इसके गुरु और शुक्र की युक्ति कही-कही सघर्ष का रूप दिखाए,। किन्तु अन्त मे सफलता अवश्य मिलेगी ऐसा ज्योतिष दृष्टि कहती है।

तीन बजे का समय है, मगल पाठ हो चुका है, अध्यक्ष का चुनाव करना है, नाम चुन दिये गये। मेरी ओर से अधिकारो की व्याख्या मागी जा रही है, अन्त मे 'वीटो' पावर का अधिकार देकर केवल दर्शक साधुओ की उपस्थिति स्वीकार कर ली जाती है। दलील यह थी कि जिस साधु-वर्ग को इन विधानो का पालन करना है उन्हे क्यो न बैठने दिया जाये किन्तु वे बोल नही सकते, बोलने का अधिकार तो केवल प्रतिनिधियो को ही रहेगा।

आम जनता मे सम्मेलन क्यो नही कर लिया जाता ? इस प्रश्न के उत्तर मे, क्योकि अभी इतनी ऊँची भूमिका है नही, जिसकी छाप समस्त दर्शको पर पड सके, नही तो आदर्शवादी सस्था को धक्का लगेगा।

रात का समय है, विषय निर्वाचन समिति बनाई जा रही है। १५ नाम चुने गए, मेरा नाम भी चुना गया है और न जाने किस-किस का नाम चुना गया, किन्तु प्रात की सभा के लिए समस्त प्रतिनिधियो ने ही विषय का निर्धारण किया। इस सघ का नाम भी तो अभी चुनना है, लीजिए नामो की परम्परा

जैन सघ, महावीर श्रमण सघ, वर्धमान श्रमण सघ, भारतीय श्रमण सघ (मेरी ओर से चुना गया नाम)

अन्त मे 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ' सर्वानुमति से स्वीकृत किया गया है।

'स्थानकवासी' शब्द और 'भारतीय श्रमण सघ' नाम रखने वालो ने प्रबल युक्तियो की झडिया लगाईं। स्थानकवासी शब्द के पीछे हमारा सारा इतिहास है, समूची परपरा है और अखिल भारतीय फेडरेशन है, तथा सर्वाधिक प्रसिद्धि का भी बल इसी नाम के पीछे है।

भारतीय श्रमण सघ-क्योकि श्रमण सस्कृति का जन्म भारत मे हुआ अत भारत शब्द जोडा जाय। 'श्रमण' शब्द क्योकि यह शास्त्रो मे बार-बार आया है और 'श्रमण' शब्द से

जैन साधुओ और बौद्ध साधुओ का ही बोध होता है। बौद्ध विदेशो मे अधिक हैं, भारत मे तो केवल जैन साधु ही श्रमण सस्था को कायम रखे हुए है। अत भारतीय श्रमण सघ ही नाम उपयुक्त है। जिसके बल पर आप समूचे विश्व मे पनप सकते है और श्रमण तथा गृहस्थ वर्ग के नाते दोनो ही मार्ग का ससार को उपदेश भी दे सकते हैं।

श्रमण सस्कृति ससार की प्राचीनतम सस्कृति है, और वह आर्यों के भारत आगमन से पर्व भी विद्यमान थी। साधको की सस्था को ही श्रमण कहा गया किन्तु साधक की व्याख्या जैन शास्त्रो की उत्कृष्टतम देन है। अत सर्वश्रेष्ठ श्रमण परम्परा यथार्थ और आदर्श के नाते जैनभिक्षु ही उसमे आते है। अत इसका नाम 'श्रमण सघ' तथा भारत जोड कर भारतीय श्रमण सघ' ही ठीक रहेगा।

प्रात काल का समय है, सोमवार का दिन है। एक आचार्य की योजना पर बहस हो रही है। उग्रदल बडी तेजी से एक आचार्य का समर्थन कर रहा है और पुरातन तथा पुराणपथी जरा सकोच कर रहा है। आचार्य तो पहले भी भिन्न-भिन्न थे, गणधरो के भी पृथक्-पृथक् गण थे तो आज ही क्यो एक आचार्य की आवाज बुलन्द की जा रही है ? उग्रदल बहुत तीव्रता से एक आचार्य को कायम कर देना चाहता है।

समाज को बचाना है, गौरव से जीना है, तो एक आचार्य की योजना के सिवाय और कोई चारा है ही नही। भिन्न-भिन्न आचार्यों ने समाज को अलग-अलग बाटा, सगठन को तोडा, अपनी-अपनी गुरुपरम्परा कायम की। इसके फलस्वरूप एक सम्प्रदाय का श्रावक व साधु दूसरी सम्प्रदाय के श्रावक और साधु को सम्यग्दृष्टि और वन्दनीय मनाने से भी इनकार करने लग गया। एक ही विचारो के लोगो मे सघर्ष हुआ, लडाइया छिडी और द्वेष की आग भभकी। यह सब एक आचार्य के न होने के कारण ही हुआ। शिष्यो की अलग-अलग टोली ने कौटुम्बिक भावना को जन्म दिया। समाज के सामने वैयक्तिक विषमता शासन करने लगी। जिसमे आज लाखो की सख्या मे अस्तित्व रखने वाली समाज छिन्न हो कर छोटी टुकडियो मे बट गई। न सगठन रहा, न प्रेम रहा और न आपसी किसी प्रकार का भी समझौता कायम रह सका।

बौद्धो की अपेक्षा हम मे क्यो इतना भयकर मतभेद और सस्थाओ का जन्म हुआ ? इसका कारण दीक्षा के समय सघ की उपेक्षा, भगवान् की उपेक्षा और धर्म की उपेक्षा है। वैरागी को क्या बताया जाता है ? केवल गुरु। क्या पढाया जाता है ? केवल 'करेमि भते।' क्या सिखाया जाता है ? अपनी सम्प्रदाय। परिचय किससे कराया जाता है ? केवल अपने सम्प्रदाय के अनुयायियो से। फिर बताइए, सामूहिक भावना किस प्रकार पैदा हो ? स्नेहधारा किस प्रकार प्रवाहित हो ? एक दूसरे से मिल कर सुसगठित बनाने की भावना किस प्रकार पनपे ?

बस केवल एक ही उपाय है, एक आचार्य और एक सघ के शासन मे नियत्रित होना।

एक वड प्रतिष्ठित आचार्य जी उठे और छ माह परीक्षण नही, अपितु आपसी समस्थिति के लिए व्यवधान माग कर बैठ गए।

मै —ऐसा करने का कारण भी बताया जाय ?

उत्तर :—क्योंकि अभी मानसिक पृष्ठभूमि सन्तो की प्रबल नहीं देख रहा हूँ ।

इतना सुनते ही मेरी आत्मा उग्रता से ध्वनित हुयी और मैंने कहना प्रारम्भ किया ।

"जिनके हाथ मे सत्ता थी, वे भी सत्ता त्याग कर एकत्रित हो कर का.र्य करने लग पड़े । जो आप सन्तों की मानसिक स्थिति की निर्बलता की ओर सकेत कर रहे हो, इससे हृदय मे हमे बहुत चोट लग रही है । मानसिक स्थिति को भापने में बडे-बड मनोवैज्ञानिक भी हार खा जाते है, आप कैसे जान पाये कि हमारी मनोभूमि निर्बल है ?

"संघ ऐक्य के लिए ७०० मील का पैदल सफर किया । चट्टानो, ककडो, काटो और भयानक प्रचडाग्नि की आंधी से मुकाबला किया केवल एकता के लिए ।

"आत्मिक और मानसिक सम्पूर्ण बल को सजो कर आज एकता का हमने आह्वान किया और फिर आप कहते हैं मन अभी निर्बल है ।

"युग कहता है कि एक हो जाओ, समाज बड़ी उग्रता से चुनौती दे रहा है कि एक हो जाओ । आत्मग्लानि और दम तोड़ती मुनि व्यवस्था, भागती हुई इज्जत और शान्ति की लालसा लिये ताकती हुई दुनिया हमसे एक ही वस्तु मांगती है, वह है एकता ।

"हमारे अन्दर सडांध पैदा हो गई है । हमारा जीवन समाज के लिए भारभूत और अपने लिये अभिशाप रूप बन गया है !

"आप युवको की ओर सकेत कर साम्प्रदायिक मोह को मत छिपाइये ! बडप्पन के नाते कोई बात मान्य नही होगी, बुद्धिवाद को नीचे दबाकर कोरा महन्तवाद नही चल सकता, आप हमारे जीवन से फ़ायदा उठाइए, हमारी ज़िन्दगी को समाज, युग और विश्व के लिये आदर्श बनाइये । उन उठती हुई जवानियो से खिलवाड मत कीजिए, इनसे कुछ काम लीजिये ! एक अनुशासन कायम करिये और एक आचार्य बनाइये, बस यही एक ढग है । नही तो इस ग्लानि मे हम जीने और सास लेने लिये तैयार नही ।"

वातावरण क्षुब्ध अवश्य हुआ किन्तु परीक्षण और व्यवधान दोनो ही शब्द हवा हो गए । कुछ क्षण के बाद सन्नाटे को चीरती हुई शान्तिरक्षक जी की ध्वनि उच्छ्वासित हुई कि एक आचार्य की योजना स्वीकार, बस कहते ही सर्वानुमति से पास हो गई ।

सबके मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की लहर दौड गई, मीटिंग समाप्त हुई ।

समाचारी का प्रश्न बहुत टेढा है, आज की सभा मे लम्बा विवाद चल पडा है । समाचारी का तेल लगाकर पुराने और घिसे तीर भी प्रहार करने चल पडे हैं । कभी प्रान्तीयता का अभिमान आडे आता है, तो कभी शास्त्रो की दुहाई दी जा रही है । युवा मुनि वर्ग तो प्र तिनिधि होने पर भी आज दर्शक का पार्ट अदा कर रहा है । अपने को भी यह विवाद बहुत शुष्क लग रहा है ।

शय्यातर का प्रश्न छिड गया, और कुछ रुचि अगडाई लेने लगी ।

आज्ञा किस की लेनी चाहिये ? मकान मालिक की । दूसरी ओर से आवाज आई, नही । मालिक और अधिकारी दोनो ही से आज्ञा ली जा सकती है । देखने वाली बात तो यह थी कि कुछ सन्त स्थानक की आज्ञा जैन बिरादरी के किसी भाई की लेते हैं और कुछ स्थानक के नौकर की भी आज्ञा लेते हैं और दोनो अपने आप को शास्त्र-सम्मत मानते हैं, और हैं भी दोनो अनुकूल ही । परन्तु दोनो का दृष्टिकोण थोडा चक्करदार है । मालिक और

नौकर की परिभाषा अलग-अलग है, अपनी-अपनी परिभाषा ही उन्हें मान्य है।

भगवान् महावीर भी उद्यान मे माली की आज्ञा लेकर ही ठहरते थे तो हमे क्या है, नौकर की आज्ञा लेकर ठहरने मे ? उत्तर मिलता है कि माली बाग की तोड-फोड मे भी शामिल है, सामान्य नौकर नही। खैर, लम्बे वाद-विवाद के बाद स्वामी और अधिकारी की आज्ञा मे ठहरने का प्रस्ताव पास हो गया।

विवाद का भाग अभी छूट गया है, प्रतिनिधि कैसे सहन कर सकते थे कि स्वामी कौन ? इसका अधूरा निर्णय कैसे छोड दिया जाये ?

उत्तर दिया गया कि जिसका उस मिल्कियत मे हिस्सा हो।

स्थानक की आज्ञा किससे लेनी चाहिये कितने ही स्थानो मे स्थानक की रजिस्ट्री ओसवाल बिरादरी के नाम की हुई है, तो क्या आज्ञा ओसवाल से ही लेनी चाहिये, क्या अन्य जैन से नही लेनी चाहिये ?

उत्तर दिया गया कि स्थानकवासी जैन से ले लेनी चाहिए।

प्रश्न उठा कि एक ग्राम मे एक स्थानकवासी जैन है, और एक ही स्थानक है, शेष बस्ती-समूची ही यवनो की है, वहाँ क्या किया जाय ? ऐसे-ऐसे ग्रामो के नाम भी बताये गए।

एक आदर्शवादी ने यथार्थ को झुठलाकर त्याग की सलाह दी किन्तु वह मान्य नही हुई। अन्त मे जैन धर्म से प्रेम रखने वाले की आज्ञा प्रामाणिक मानी गई तभी छुटकारा हुआ। यह प्रश्न भी एक युवक मुनि ने ही उठाया था।

समाचारी के प्रसग मे विद्युत् का प्रसग भी बहुत रोचक रूप मे उपस्थित हुआ। इस प्रश्न को भी बडे नाटकीय ढग से उपस्थित किया गया और समर्थन भी बहुत विचित्र तरीके से।

विद्युत् के प्रश्न के बारे मे सारी समाज मे मतभेद है। लाऊडस्पीकर के कारण यह प्रश्न इतना पेचीदा बना है, क्योकि मुनि लोग आध्यात्मिक जगत् से उतर कर सामाजिक और प्रचार के रगमच पर अपना आसन जमा रहे है। स्थिति इसलिये गभीर बन गई है कि एक ओर तो समाज हमे सामाजिक रूप मे और प्रचारक के रूप मे देखना चाहती है और दूसरी ओर आध्यात्मिक पूर्ण निवृत्ति प्रधान रखना चाहती है। कैसी विचित्र समस्या है। प्रचार चाहती है किन्तु प्रचार के साधन देने मे शर्म मानती है। यह कैसे चल सकता है, बस क्या था, बहुत लम्बा विवाद चला, और एक प्रबल समर्थक प्रतिनिधि ने तो लाऊड-स्पीकर का निषेध करना अनधिकार चेष्टा करना है, यहा तक कह दिया। इससे खलबली मची किन्तु उसकी चातुरीपूर्ण उक्तियो ने उनके खम्बे हिला दिये।

"लाऊडस्पीकर श्रोताओ की जरूरत है, वक्ता की जरूरत नही। वक्ता की वक्तृत्व-कला मे जहा भाषा, भाव और स्वर आवश्यकीय तत्त्व है वहा लाऊडस्पीकर का समावेश नही। ध्वनिवर्धक का सम्बन्ध श्रोताओ से है, इसीलिये वह वक्ता के कारण नही लगाया जाता अपितु अधिक श्रोताओ के कारण लगाया जाता है। इसलिये इसके निषेध मे हमे नही जाना चाहिये।

किन्तु चुपके से दूध पर से मलाई कौन उतारने देता है, सचित्त और अचित्त का झगडा आ गिरा और लाऊडस्पीकर की समस्या कितनी ही सतह नीचे उतर कर दब गई।

एक कमेटी बन गई, 'सचित्ताचित्त-निर्णायक समिति' उसका नाम रखा गया।

बहुत सारी वनस्पति कुछ शस्त्र परिणत होने पर और केला आदि छिलका उतरने पर कई साधु ग्रहण करते है, और कई नही। (यह एक विवाद का विषय था, झगडे मे सब चलते हैं और सन्देहास्पद का त्याग होना भी जरा मुश्किल है। आखिर क्या किया जाये। कुछ तो होना ही चाहिए। अन्त मे कमेटी पर निर्णय का भार रखकर इस सिरदर्द से छुटकारा लिया गया।

सम्प्रदायवादी साम्प्रदायिक नामो के मोह को छोडने के लिए तैयार नही थे, किन्तु यह उक्ति श्रावको पर अधिक चरितार्थ होती है। फिर भी उनका किसी न किसी श्रमण ने प्रतिनिधित्व करते हुये कहा कि कितना अच्छा हो कि हम अपने श्रमणसघ को बडे-बडे आचार्य जिन पर आज भी सम्प्रदाय चल रहे है उनके नाम पर सुसगति करें जिससे उन पूज्यो का भी सुयश बढ़ा सके।

बड़े महापुरुषो से किसी को भी झगडा नही, हा साम्प्रदायिक सगठनो से चिढ अवश्य है। क्योकि ये ही तो एक मात्र हमारी फूट के कारण है।

"नही साहब, समस्त नाम हटा कर एक ही श्रमण सघ का नाम चलेगा और किसी का नही चल सकता।"

"एकदम मोह त्याग करना जरा कठिन होता है, योगाभ्यास करने के लिये भी छ मास रिहर्सल करनी पडती है। अत छ मास की अवधि जरूर देनी चाहिये।"

"आज हमारे ये कैसे मुर्दा खयालात हैं। माता-पिता, स्नेही-सम्बन्धी को छोडते तो हम ने एक मिनट नही लगाई, अब साम्प्रदायो का मोह हमारे पीछे ठाठे मारेगा। क्या आज हम बीस-बीस वर्ष और पचास-पचास वर्ष की निरन्तर मोहत्याग साधना के बाद इतने माया-मोही बन गय है कि हम सम्प्रदायो के मोह को भी छोडने मे असमर्थ हैं?

"मै नही समझता कि अब आप छ माह मे क्या जादू कर देगे कि मोह बिलकुल ही भाग जायेगा। मेरे विचार मे ये तथ्यहीन तर्क हैं।"

हाऊस मे एक ऐसे प्रतिनिधि थे जो सबसे बडा आग्रह रखते थे। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्हे कोई पहचान नही सका, क्योकि उनका आग्रह शब्दो मे छिपा नही होता था। अपितु अभिप्रायसूचक व्यग्यपूर्ण ध्वनि के गाम्भीर्य मे रूप सँवारे हुए था। जिस पर लगभग प्रतिनिधिगण कितनी ही बार मुग्ध हुए और हा मे हा मिलाते रहे।

वे उठे, अवधि की माग को मीठी गर्जना के साथ ठुकरा दिया। और सर्वानुमति से साम्प्रदायिक नाम हटाने का प्रस्ताव पास हो गया। प्रान्तो के बटवारे के विषय मे भी एक जबरदस्त झडप हुई, कोई कहता कि प्रान्त पाच बनाने चाहिये। उत्तर मे कहा गया कि ऐसा कैसे हो जायेगा। उत्तरप्रदेश मे विचरने वाला आदमी अपने आप को पजाबी किस प्रकार कहलाएगा? जैन स्थानक पर उत्तरप्रदेश के स्थान पर पजाब कैसे लिखा जाएगा?

प्रान्तो के निर्माण मे आधार भी तो होना चाहिये, या कि बिना आधार के ही प्रान्त बन जाएगे। अगर सरकार के बनाए प्रान्त उसी रूप मे स्वीकार कर लिये जाए तो क्या हर्ज है?"

"सरकारी प्रान्त तो बहुत हैं।"

"तो क्या हर्ज है, प्रचार की भूमिका बढ़नी चाहिए, समस्त प्रान्तों मे प्रचार करने के लिये हमे बढ़ना चाहिये।"

"क्या आप को पता है, सरकारी कितने प्रान्त है ?"

'तो आप ही बताइए, हमे तो पता नही कौन-कौन से सरकारी प्रान्त है ? उप्रदलीय प्रतिनिधि उठे, कहने लगे, "बड़े दु ख से कहना पडता है कि विश्व-भर का भूगोल बनाने वाले भगवान् के शासन के पट्टधर आचार्यों को आज भारत के प्रान्तो का भी पता नहीं मैं यह भी निवेदन कर दू कि प्रान्तो का वर्गीकरण करने से पहले मुनि श्री की सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिये।"

प्रस्ताव अधिक लम्बा होने के कारण अरुचिकर-सा बन गया और सरकारी प्रान्त लगभग १६ स्वीकार कर लिये गए।

प्रान्त का प्रश्न इतनी उलझन लेकर आया कि आते ही झमेला खडा कर दिया और जाते-जाते कितनी ही उलझन-भरी कडियां छोड गया। प्रश्न उठा कि प्रान्तो का धर्म-कार्य चलाने के लिये क्या प्रबन्ध करना होगा। क्या प्रान्ताचार्य बनाने हैं, या प्रवर्तक बनाने है या अन्य अधिकारी नियुक्त करने है जो प्रान्तीय मुनियो की सुव्यवस्था कर सके।

इस एक प्रश्न के साथ लम्बी समस्याए उलझी हुई है। प्रान्तीय भावना भी कही सिर न ऊचा उठाए और साम्प्रदायिक दलबन्दिया भी कायम न रह सके। कभी ऐसा भी न हो कि प्रवर्तक या प्रान्ताचार्य चुनते समय बडी सम्प्रदाये छोटी सम्प्रदायो को हडपकर मजबूत पंजा जमा ले। गरमा-गरम बहस के बाद मन्त्रिमण्डल की योजना स्वीकार की गई और १६ मन्त्री बनाए गये तथा १६ का कार्य चुनने का भार मुझे सौंपा गया, मानने का अधिकार हाउस ने अपने पास रखा।

मेरे जो १६ विभाग थे वे विश्व-भर को आगे रख कर बनाये गए थे, क्योकि मेरे विचार मे विदेशो मे भी धर्म-प्रचार और भारत का सास्कृतिक परिचय देने के लिये मुनियो का विदेश-गमन भी समाविष्ट था। आज किसी नाम के प्रचार की जरूरत नही, अन्धश्रद्धा अभिशाप है, सकीर्णता, दलबन्दी और साम्प्रदायिकता मनुष्यमात्र के लिये कलक है। आज की आवश्यकता केवल एक है, कोटि-कोटि अभिवन्दनीय श्रमण भगवान् महावीर के शब्दो मे "माणुसत्त परम दुल्लह" अर्थात् मानवता ही परम दुर्लभ है। उसी की विश्व को आवश्यकता है, और उसी के प्रचार की जिम्मेदारी श्रमण सस्था पर है।

किन्तु अभी श्रमण-सघ पर रूढिग्रस्त तत्वो का गलबा है। अत उभरने मे कुछ वर्ष और लगेंगे। १६ विभाग स्वीकार नही किये, केवल आठ ही माने और एक विभाग पर एक से अधिक मन्त्री नियुक्त कर दिये गये।

अभी एक विवादग्रस्त प्रश्न तो रह ही गया था, उसने भी सिर उठाया, 'तिथि-सम्बन्धी वाद-विवाद निपटाया जाये' इस नाम से प्रगट हुआ।

पक्खी, चातुर्मासी और सवत्सरी के सम्बन्ध मे बहुत गडबड है। इस घोटाले को भी समाप्त कर देना चाहिये।

एक प्रतिनिधि ने अजमेर सम्मेलन का सहारा लिया और एक दूसरे ने गड़े मुर्दे उखाड़ने वाली लोकोक्ति ही चरितार्थ कर दी।

खूब गरमा-गरम बहस चली, पक्खी-संवत्सरी के नाम पर जोरदार रस्साकशी शुरू हो गई।

सवत्सरी कब करनी चाहिये ? जब चातुर्मास मे लोद का मास आ पडता है तब क्या करना चाहिये। शास्त्र मे तो केवल ४९ वें दिन चातुर्मास के ७० दिन शेष रहते सवत्सरी मनानी चाहिये, ऐसा ही उल्लेख है। उसमे लोद का क्या कोई जिक्र नही ?

दूसरी ओर से आवाज आई कि दो सावन हो तो पिछले सावन मे और दो भादो हो तो पिछले भादो मे सवत्सरी करने की हमारी मान्यता है।

तीसरी ध्वनि भी गूजी, "नही हमारे आचार्य ने सवत्सरी के विषय मे सम्मेलन करने तथा निर्णय मानने मे अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी है।"

उनकी मान्यता है कि दो सावन हो तो भी भादो मे और दो भादो हो तो पिछले भादो मे सवत्सरी मनाने की हमारी धारणा है।

एक और हुंकार उठी, "क्या शास्त्रो की दुहाई देने वालो के लिये यह एक चुनौती का प्रश्न नही है ?" बडा कोलाहल मचा, अकस्मात् एक प्रतिनिधि ने मध्यम मार्ग का सुझाव दिया। पास के दूसरे प्रतिनिधि ने "मध्मय मार्ग से समझौता करना कायरता से समझौता करना है" कह कर मध्यम मार्ग के सुझाव को रद्द कर दिया।

विवाद गहरा रग धारण कर गया और रात की सभा मे निर्णय करने का निश्चय कर सभा विसर्जित हो गई।

इधर-उधर मुनियो को सवत्सरी के विषय मे एक मत करने के लिए बडी भगदड मची। रात की मीटिंग मे यह प्रस्ताव फिर आ धमका।

अन्त मे समस्त प्रतिनिधिमण्डल ने एक मुनि के याचना करने पर अपनी सारी धारणाएँ अर्पण कर दी। यदि दो सावन हो तो भी और दो भादो हो तो भी केवल पिछले ही भादो मे सवत्सरी करने की मान्यता स्वीकृत कर ली। तब जाकर इस विवाद का अन्त हुआ।

तिथियो के निर्णय मे फिर झगडा था। कोई उदय से तो कोई अस्त से तिथियो को मानता है। क्या निर्णय किया जाय ? इसीलिए किसी की चतुर्थी और किसी की उसी दिन पचमी तिथि आ जाती है। इन आतरिक कलहो और मतभेदो ने इस समाज को एक नही होने दिया है।

अजमेर का निर्णय भी बहुत लचर है। एक तिथि निर्णायक कमेटी बनाई गई थी। किन्तु उसका निर्णय आज तक भी प्रकाश मे नही आया। हा, उसका एक निर्णय जिसमे उसने कान्फरेन्स को पक्खीपत्र प्रकाशित और प्रमाणित करने का अधिकार दिया था, उस पर आज भी आचरण किया जा रहा है। सब तो स्वीकार नही करते किन्तु फिर भी अधिकतर सम्प्रदायें कान्फरेस की टीप को ही प्रमाणित मान कर चलती हैं।

किन्तु कान्फरेस के पक्खीपत्रो मे भी बहुत गडबडी देखने मे आती है, तब क्या करना चाहिए ? यही समस्या है और अनिर्णय की स्थिति भी उसी तरह मुह बाये खडी है।

हाउस मे कुछ देर तो सन्नाटा छाया रहा। आखिर एक कमेटी बनाकर उसके निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिए, इतना ही निर्णय हुआ। देखें अब कब निर्णय होता है।

दीक्षार्थी का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था, जिस पर चर्चा उग्ररूप धारण कर गई। उग्ररूप का अर्थ क्रोध नही, अपितु एक ओर एक पक्ष का अनुमोदन और समर्थन था तथा दूसरी ओर दूसरे पक्ष का समर्थन और अनुमोदन था।

एक ओर से कहा जाता था कि योग्यता देखकर दीक्षा देनी चाहिए, दूसरी ओर से आयु का भी विशष अनुरोध किया जा रहा था कि अमुक आयु के उपरान्त ही बालिग दीक्षार्थी दीक्षा ले सकेगा।

युवक मुनिगण की ओर से बालदीक्षा का गहरा विरोध था जो कि इन पक्तियो के लेखक के माध्यम से स्फोट हो रहा था। अन्त मे दीक्षार्थी को दीक्षा देने का अधिकार मन्त्री व आचार्य को ही देकर इस प्रश्न से विराम ग्रहण किया गया।

मैं अधिक लम्बा जाना नही चाहता। सम्मेलन के सस्मरण बहुत बढ जाएँगे। मैं उन्हे विभाग और वर्गरूप मे बाट कर जल्दी से जल्दी छुट्टी लूगा।

सम्मेलन के सस्मरण पाच भागो मे बाठे जा सकते है।

१ धार्मिक, २ बौद्धिक, ३ सामाजिक, ४ साम्प्रदायिक, ५ ऐक्यविषयक

१ धार्मिक सस्मरण नियम, उपनियम, समाचारी तथा विधान के रूप मे उपस्थित किये गए जिनका सम्बन्ध अधिकतर साम्प्रदायिक धाराओ से है और मैं अधिकतर उनका उल्लेख भी कर आया हूँ।

२ बौद्धिक सस्मरण अधिक सख्या मे तो नही है, फिर भी रूढिवाद पर बुद्धिवाद की विजय कही-कही अवश्य हुई है।

वास्तव मे सम्मेलन की सफलता बुद्धिवाद की विजय भी कही जा सकती है क्योकि बुद्धिवादियो ने स्वार्थ को आगे न रख कर सघहित को ही प्रधानता देने मे कल्याण समझा है।

मत्रिमण्डल और समूची शासन-व्यवस्था बुद्धिवाद के सिद्धान्तो से ही अनुस्यूत है, यद्यपि इसे रग कुछ भी चढाना पडा हो। यह भी तो बुद्धिवाद की अनुपम जीत है कि शास्त्रीय पद्धति को युग के अनुकूल बना दिया जाय।

रूढिग्रस्त तत्व इसे नही पहचान पाया और खुशी के साथ रूढि का भावुकता तथा भौतिकता का रूप नही ले सकती।

३ सामाजिक सस्मरण के रूप म हम कितने ही महत्वपूर्ण विचार रख सकेगे क्योकि जो कुछ हुआ वह व्यक्ति की अपनी निजी इच्छा के कारण नही अपितु समष्टि की माग की पूर्ति के रूप मे, निजी महत्वाकाक्षाएँ बलि के रूप मे चढानी पडी।

समाज ऐक्य के बिना बलवान् नही बन सकता। उसका आदर्श है केवल मुनिगण, यदि वह एक बने तो समाज भी एक बन सकता है। आखिर समाज भी तो मुनियो के नामो पर ही बिखरा हुआ है। मुनियो की अनेकता के मिटते ही समाज की अनेकता स्वय लुप्त हो जायेगी।

यही कुछ समझ कर एक आचार्य योजना स्वीकार की गई।

महावीर भवन, साम्प्रदायिक उपाश्रय और वैयक्तिक नाम पर चलने वाली सस्थाएँ ही समाज की बिखरी हुई असगठित शक्तिया हैं।

सम्मेलन ने इस विषय पर बडी सावधानी पूर्वक जोरदार काम किया है कि समस्त स्थानक (भले ही वे किसी भी नाम से पुकारे जाते हो) एकमात्र श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रावक सघ की निश्राय मे आ जाने चाहिए, और उनका नाम जैनस्थानक ही होना चाहिए तभी जैन श्रमण सघीय मुनि उसमे ठहर सकेंगे, वरन् उसमे कोई नही ठहरेंगे। इसके लिए एक वर्ष की अवधि दी गई है। सवत्सरी आदि तिथि-निर्णय भी सामाजिक एकता के नाते किए गए है। साहित्य, शिक्षण, प्रचार, चातुर्मास ये सब समाज को उन्नत बनाने के लिए ही व्यवस्था बांधी गई है।

कोई भी साहित्य साहित्य मन्त्री की आज्ञा बिना नही छपा सकेगा। नही तो ये पुस्तकें भी कभी-कभी हथियार के रूप मे बरती जाती थी।

शिक्षण के बिना मानस कभी पनप नही सकता। जितने ऊँचे दर्जे का शिक्षण दिया जायगा उतना ही हमारा मानसिक धरातल स्वच्छ और ठोस तथा सस्कारयुक्त बन सकेगा।

प्रचार-सम्बन्धी समस्त नियम-उपनियम भी समाज को आगे रख कर बनाये गए और बनाए जायेंगे।

चातुर्मास का दृष्टिकोण भी यही है। तीन-तीन, चार-चार सौ घरो वाले ग्राम भी चातुर्मास के लिए तरसते है किन्तु मुनि नही पधारते है। उनकी भी सुनवाई की जायगी।

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से कुछ बातें अवश्य रह गई हैं। इस सघ का नाम समाचारी तथा अन्य कुछ और ऐसी बाते है जिनमे हमने अपनी सकीर्णता का परिचय दिया है और आजकल सकीर्णता का ही पर्यायार्थिक शब्द साम्प्रदायिक स्वीकार कर लिया है।

ऐक्य विषयक प्रस्ताव हमने भले ही पास नही किए है, वातावरण जरूर तैयार कर लिया है और हमारा कुछ उद्देश्य यह बन गया है कि जैनो के समस्त फिरको को एक पथ पर लाया जाय। श्री पुण्यविजय जी का पुण्य मिलन, हाऊस मे आना, स्वागत और स्नेह सवादो मे प्रेम बढाना, इसी तथ्य की ओर सकेत कर रहा है।

हमे अन्त मे भारत और विश्व की एकता का सदेश देना है, मानवता का पाठ पढाना है। हा, उसमे पहले स्वय को तो पढना ही चाहिए क्योकि कोरा आदर्शवादी उपदेश व्यवहार्य और ग्राह्य दोनो गुणो से शून्य रहता है। इसीलिए आज के ससार मे उपदेश उतने महत्वपूर्ण नही रह गए है जितना कि इन्हे होना चाहिए था।

इस श्रमण सघ ने स्वय एकता का पाठ पढा है और उसने दुनिया के लिए आदर्श बन कर एकता का मूक पाठ तो पढा ही दिया है। इसमे कुछ भी अत्युक्ति नही है।

मैं ससार के उस वर्ग से सम्बन्ध रख रहा हू जिसकी आजीविका का भार समाज वहन करता है। इस आदान के अनन्तर प्रदान का दायित्व इस सस्था पर अधिक आ पडता है। इसने उसे पूर्ण किया या नही आज यह प्रश्न विचारणीय नही रहा, अपितु पिछली भूल भविष्य मे न पनप सके, ऐसे सुधार का ही प्रश्न शेष रह जाता है।

इस प्रश्न के समाधानार्थ ही सम्मेलन मे मैंने अधिक चाव से भाग लेने की आत्म-साधना की। शारीरिक कष्ट-परम्परा को ध्यान मे न रख कर सम्मेलन मे पहुँचा और उसमे उचित भाग अदा किया।

मेरा एक काम था कि मैं युग के सन्देश को सुनाऊँ और बार-बार चेतावनी देता रहू कि भविष्य में अगर श्रमणवर्ग को जिन्दा रहना है तो वह आज से उत्तरदायित्वपूर्ण बने। अनुत्तरदायी व्यक्ति को राष्ट्र मे कोई स्थान प्राप्त नही हुआ करता।

श्रमण वर्ग के पास पेट की समस्या का कोई समाधान नही। यदि आप कटु सत्य सुनने की क्षमता धारण कर सकें तो मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं युग के यथार्थ दिग्दर्शन का चार्ट पेश कर सकू।

आज देश को कर्मवीर बनने की जितनी जरूरत थी उतनी ही अधिक श्रमण वर्ग ने देश को भीरु बनाने मे सहयोग दिया। मैं इस तथ्य को भलीभांति जानता हू कि श्रमण सघ का अभ्युदय पुरुषार्थ की परकोटि पर आश्रित था। किन्तु आज का श्रमण भगवान् महावीर का श्रमण नही, वह तो शकर के मायावाद के प्रभाव मे आया हुआ अद्वैतवादी श्रमण है।

संसार की अनित्यता का, स्वर्ग-नर्क का, और आरम्भ-समारम्भ का डरा हुआ घिनौना रूप आज के श्रमण सघ की ही देन है।

आज की साधना स्वर्गीय सुखो की मीठी कल्पना के लिये की जा रही है। यह पलायनवाद का धार्मिक रूप राष्ट्र के लिये कितना घातक है, क्या आप इसकी कल्पना नही कर सकते ?

'कम्मे सूरा' और 'धम्मे सूरा' का सिद्धान्त कितने बुरे तरीके से श्रमण सघ ने बदनाम किया है। थोथे क्रिया-काण्ड पर बल दे-दे कर समाज और धर्म की अन्तरात्मा को कितना खोखला किया है।

अधिक से अधिक नियमो के शिकजो मे आजादी के लौहवीर श्रमण को बाधकर मोक्ष की खुली भावना को क्या नही कुचला है ?

आइए, जरा सोचिए और मुझे बताइए कि श्रमण का उद्देश्य क्या था ? पूर्ण निवृत्ति प्रधान बनाने का वास्तविक लक्ष्य क्या रखा गया था ?

इसका यथार्थ शब्दो मे आप उत्तर देंगे कि 'मोक्ष' अर्थात् शुभाशुभ से छुटकारा। बताइए सच्चे दिल से भगवान् की साक्षी से आज के श्रमण का क्या वास्तव मे यही उद्देश्य है ? अगर है तो छोडिए समाज, कुटुम्ब, शिष्य-भावना तथा सम्प्रदायवाद, अलग हो जाइए इन समस्त प्रवृतियो से।

अगर आप समाज कल्याण के हिताकाक्षी हैं तब भी बहुत अच्छी बात है लेकिन यह तो बताइए कि समाज की कौन-सी निर्बलता को दूर करने की जिम्मेदारी आपने ली है ?

अगर आप आत्मकल्याण के साथ-साथ समाज कल्याण भी चाहते है तब भी मुझे तो कोई आपत्ति नही, मैं तो इस भावना का भी आदर करता हू, किन्तु जरा आत्मा से पूछिए तो सही कि वे क्रोध, मान, माया लोभ, लोलुपता, प्रतिष्ठा की भूख और ऐन्द्रिय सुखाकाक्षा कितनी मिट गई है ?

किसी तरफ चलिए, किन्तु कपना एक उद्देश्य लेकर चलिए, निरुद्देश्य मत चक्कर काटिए। आत्म-साधना करना या समाज सेवा दोनो ही उपायेगी कार्य हैं किन्तु समाज पर भार बनकर समाज को खोखला बनाना तो उपयोगी नही कहा जा सकता।

आप बताइए कि आप समाज पर भार हैं या नहीं ? अगर हैं तो भार बनना छोड दीजिए; अगर नही हैं तो दायित्वपूर्ण बनिए और भार कहने वालो को मुहतोड उत्तर दीजिए। किन्तु वह उत्तर शब्दो से न होकर रचनात्मक कार्य से होना चाहिए !

मेरे यही विचार थे जो कि मुझे पजाब से उठा कर राजस्थान सम्मेलन में ले गये। मुझे इन विचारो को प्रगट करना था और मैने इसके लिए दोहरा काम किया है। उधर साधु-समाज से उत्तर भी मांगता और इधर जन-समाज को भी अन्धश्रद्धा छोडने के लिए बाध्य कर रहा था। मैं इसमे सफल हुआ या नही ऐसा सोचना मेरे लिए आवश्यक नही। फिर भी आप अधिक आग्रह करेंगे तो मैं इतना उत्तर दूगा कि एक हृदय में उठने वाली विचारधारा सैकडो विचारधाराओ से मिलकर अत्यन्त शक्तिशाली अवश्य बन पाई है।

सम्मेलन पर हुआ विशिष्ट व्यक्तियों से वार्तालाप—

उत्क्रांति के सूत्रधार मुनिवरों के परिचय देने का तो मुझे लोभ सवरण करना ही होगा। इसमे कारण मैं नही बल्कि परिस्थिति है। हा, पहला वार्तालाप टीकाराम पालीवाल, मुख्यमन्त्री राजस्थान से हुआ –

यह सवाद भी मैं एक-एक सस्मरण के रूप में रखू तो अधिक अच्छा रहेगा। सायं-काल के समय मैं गुरुकुल भवन के बरामदे में खडा एस० एस० जैन सभा पजाब के आदरणीय अध्यक्ष श्री हरजस राय जी से बातचीत कर रहा था जो कि अपनी समाज के एक तपे-तपाए कर्मठ और सच्चे रूप मे नेता हैं। यह एक स्तुति नहीं अपितु वास्तविकता का छोटा-सा रूप है। उनके रचनात्मक कार्यों की लम्बी परम्परा स्तुति की दीवारो को लाघ चुकी है। हा,अभी बातचीत चल रही थी कि इतने मे मुख्यमन्त्री और उपमन्त्री तथा अन्य प्रान्तीय उच्चाधिकारी दलबल के साथ मेरे निकट आ गए। मुझे उनका परिचय दिया गया और कुछ समय मे ही हमारे शान्तिरक्षक, सम्मेलन के सूत्रधार, एकता के सदेशवाहक स्वामी श्री मदनलाल जी महाराज आ निकले। बस, फिर क्या था। प्रसन्नता की लहरो में परिचय के आदान-प्रदान का कार्य मैंने ही अपने ऊपर उठाया, उन्हे बताया कि ये हमारे आध्यात्मिकता-प्रधान श्रमण सस्था के शान्तिरक्षक (अध्यक्ष) है। और आप राजस्थान के मुख्यमन्त्री।

विश्वशाति कैसे ? प्रधानमन्त्री के इस मूक प्रश्न का समाधान देते हुए मैंने कहा कि जब तक आत्मा और बुद्धि का समझौता नही हो जाता तब तक विश्व मे शाति स्थापित नही हो सकती।

विश्व आज आत्मा को दबा कर बुद्धि से विश्वशान्ति का उपाय ढूढ रहा है। किन्तु याद रखिये, तर्कप्रधान बुद्धि, भौतिक सम्पत्ति को तोल-तोल कर शान्ति का सास नही ले सकती।

आत्मा भी बुद्धि, मन और शरीर के आधार के बिना अपना कार्य पूर्ण नही कर सकती। आज का युद्ध आत्मा और बुद्धि मे हो रहा है। धर्म और विकृति मे तनाव है।

याद रखिये, मनुष्य तीन प्रकार की भूख रखता है—पेट की, मन की और आत्मा की। मुख्यमन्त्री जी ! यदि आप एक ही भूख शान्त करने का उपाय करोगे तो दो भूख फिर भी शेष रह जायेंगी और जब तक भूख है तब तक अशान्ति है और अशान्ति का उग्र रूप ही युद्ध है। पेट की भूख का उपाय कम्युनिज्म से सीखिए। मन की भूख ऊँचे साहित्य तथा

विचारधाराओं से मिटाइए और आत्मा की भूख अध्यात्मप्रधान निवृत्ति से मिटाइए। इसके लिए आवश्यक है कि भौतिक सम्पत्ति के समाजीकरण के साथ-साथ यम, नियम, महाव्रतो का भी आत्मीकरण करिये तभी जाकर शान्ति आ सकती है। रूस मे एक क्रान्ति आई और पेट की समस्या का समाधान कर गई। अब दूसरी क्रान्ति आएगी जिसमे कुचला हुआ मन और दबी हुई आत्मा के लिये भी अध्यात्म को खुला स्थान मिलेगा। तभी रूस मे वास्तविक शान्ति आ सकेगी। यही तरीका समूचे विश्व के लिए है।

आपको चाहिये कि जहा आप उग्र रूप से भौतिकता की वृद्धि की दौड लगा रहे हो वहाँ जरा अध्यात्म का भी उपदेश दीजिए और उसके लिये भी प्रबन्ध करिए।

हिन्दुस्तान टाइम्स, सर्चलाइट, लीडर तथा पी० टी० आई० के सम्वाददाताओं से हुआ वार्तालाप—

सम्मेलन के विषय मे कुछ औपचारिक प्रश्नोत्तर हुए फिर उन्होंने भी प्रश्नो का ताता साथ ही लगाया—

जैन धर्म का मुख्य सिद्धान्त क्या है ?

'अहिंसा' पर सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये चार अहिसा के पूरक के रूप मे महाव्रत के नाम से स्वीकार किए गए है। प्रेम, ईमानदारी, प्रामाणिकता तथा विश्वास इनके बिना अहिसा पनप ही नही सकती। हिसा से इनका नाश होता है और अहिसा से पोषण। आप धर्म की क्या व्याख्या करते हैं ?

'वत्थुसभावो धम्मो' वस्तु की वास्तविक स्थिति का नाम धर्म है। विकृति अधर्म है और वास्तविक स्थिति ही धर्म है, स्वभाव धर्म है, समता धर्म है, किन्तु विषमता, किसी के विध्वस और निर्माण की विषमता अधर्म है।

आप मतानुयायी हैं या धर्मानुयायी ?

"वास्तव मे धर्मानुयायी।"

मत से आप क्या अभिप्राय लेते है ?

"परिस्थितिजन्य विवशता को दूर करने की मति से सूझा हुआ ढग।"

इसके सबूत मे देखिए दुनिया भर के मत जो कि परिस्थिति की विवशता को दूर करने के लिए जन्मे थे किन्तु आज वे परिस्थितियाँ तो खिसक गईं। किन्तु वे मत खड़े रहे। इसीलिये उनकी उपयोगिता नही रही। केवल दुनिया के लिए सिरदर्द के सिवा मत और कुछ नही कर रहे।

यवनो के दुर्धर्ष काल मे सिख मत हिन्दुओ की रक्षापवित के रूप मे खडा किया गया था। आज वह परिस्थिति तो नही रही किन्तु सिख सस्था है। फल यह निकला कि वह आज रक्षा के स्थान पर आक्रमणकारी पक्ति मे जा खडी हुई, स्वार्थियो ने उससे अपना स्वार्थ साधना शुरू कर दिया।

आर्य समाज भी सुधारो और सगठन के सन्देशवाहक स्वामी दयानन्द का मत था। किन्तु आज वह पृथक् ही इकाई के रूप मे अपने स्वार्थो की रक्षा सोचने लगा।

मत परिस्थिति के साथ-ही-साथ विलीन हो जाने चाहिएँ, नही तो मत धर्म का चोला पहन कर जनता को अन्धश्रद्धा की खाई मे गिरा देते है।

उपयोगितारहित मतपरम्पराओ को समाप्त करने के लिये आप क्या कर रहे हैं ?

"यही कि उनकी अनुपयोगिता दिखाना। अगर आप सच्ची मानवतापर विश्वास करते है तो हम भी आपको पूर्ण सहयोग देने के लिये तैयार हैं।"

"मैं अनुपयोगी मत पर ही प्रहार नही करता अपितु साहित्य पर भी करता हूँ। मैंने ससार-भर के साहित्य-मर्मज्ञो के काव्य-लक्षणो को भी चुनौती दी है। मैं तो यह कहता हूँ कि वस्तु और भावमय युग जब मस्तिष्क-प्रधान भाषा के माध्यम से स्फूर्त होता है तब उसे हम दर्शन का नाम देते है और जब वही युग हृदय की भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है तो उसका नाम काव्य या साहित्य होता है।"

सवाददाताओ ने बडी प्रसन्नता व्यक्त की, मेरा भी प्रतिक्रमण का समय था। बस, अखबारो को पूर्ण सहयोग का वचन देकर विदा ली।

'ललकार' के सम्पादक से सम्मेलन के विषय मे बडी लम्बी बातचीत हुई। सम्मेलन का उद्देश्य और उसके आदर्श-सम्बन्धी बहुत रोचक प्रश्नोत्तर हुए। जिसमे मुख्य भविष्य सम्बन्धी ये प्रश्न थे— क्या सम्मेलन का कार्य स्थायी रह सकेगा ? "अवश्य, निश्चित।"

प्रमाण ?

क्योकि युग और समाज इस कार्य को पूरा करने मे कटिबद्ध है। "क्या साम्प्रदायिक घेरे अभी तोड नही देने चाहिए ?"

प्रतीक्षा कीजिए और आत्मा के अन्तर्नाद मे अपना उत्तर टटोलिए। लोकाशाह के सम्पादक ने तो समूचा वार्तालाप अपने पत्र मे ही छाप दिया था। एस० एस० जैन कान्फ्रेंस के समस्त मन्त्रियो से जो विचार-विमर्श हुआ, वह आपसी समझौते से अधिक सम्बन्ध रखता है।

चुन्नीलाल कामदार जी तो स्पष्टत यथार्थ और भावना का समन्वय करके चलने वाले व्यक्ति है।

अन्तिम निवेदन —

स्थानकवासी श्रमणो का यह सम्मेलन भारत मे ही नही अपितु विश्व-भर मे बेजोड है। इसने समाज की माग नही अपितु विश्व की युगो की समस्या को सुलझाने मे सहयोग देकर साधु-सस्था मे नई प्रेरणा और नवीन चेतना तथा नव्य भव्य भावना उत्स्फूर्त करने का महान् कार्य किया है।

साधु सम्मेलन ससार-भर के लिये आदर्श बनेगा और श्रमण सस्कृति मे नए प्राण डालेगा। यह सम्मेलन व्यक्ति-व्यक्ति के लिए जहाँ हर्ष, आह्लाद और स्नेहधारा का विषय बनेगा वहाँ यह समाजद्रोही श्रमण-विद्वेषी के लिए ईर्ष्या का भी कारण होगा। इस सम्मेलन ने सकडो वर्षों से जलती ईर्ष्याग्निओं पर तुषारापात किया। बिखरी हुई इकाइयो को एक सूत्र मे पिरोया। पनपती हुई साम्प्रदायिक भावनाओ के सिरो को कुचला और बुद्धिवाद तथा आत्मवाद का पथ प्रशस्त बनाया। युग-युग तक यह सम्मेलन बार-बार अमर रहे और जीवन-ज्योति जगाते रहे तथा समाज मे देश मे, और दुनिया मे आत्मिक तत्त्वो को जागृत करने का सन्देश देते रहे, ऐसी मेरी अमर भावना है।

सघ का मूर्त स्वरूप—

श्रमण संघ का नाम—'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ'

श्रावक सघ का नाम—'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ'

सघपति 'आचार्य' कहलाएगे और वे दो होगे—

आचार्य—जैनाचार्य श्री आत्माराम जी महाराज ।

उपाचार्य—श्री गणेशीलाल जी महाराज ।

समस्त कार्य विभाग मन्त्रियो को सभालना पडेगा । उनमे एक प्रधानमत्री होगा और कुल १६ मत्री होगे ।

प्रधानमत्री—श्री आनन्द ऋषि जी महाराज । शेष अन्य मत्री होगे ।

अब तक श्रमण सघ के सदस्य १४० साधु तथा ५०० के लगभग साध्वी है जिनके फार्म आ चुके हैं या आने वाले है ।

आचार्य पद महोत्सव—वैशाख शुक्ला त्रयोदशी ता० ७-५-५२ को एक बडे समारोह के साथ इस सघ को मूर्तरूप दे दिया गया और दोनो आचार्यो को चादरें समर्पित की गईं । आचार्य जी महाराज वृद्धावस्था के कारण सम्मेलन मे उपस्थित नही थे । अत उनकी चादर उनके प्रतिनिधि भू० पू० युवाचार्य श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज को प्रदान कर दी गई जिससे जब भी वे पजाब मे पहुचे, आचार्य जी महाराज को सौप दें ।

इससे पहले मुख्य-मुख्य आचार्यों, उपाध्यायो तथा मुनिवरो के भाषण भी हुए, जिनमे मुझे भी कुछ कहना पडा । मेरे कुछ शब्द—

"मेरे से पहले बडे-बडे मुनिराजो ने सम्मेलन की भूमिका के विषय मे आप सबको बता ही दिया है कि इस सम्मेलन के लिए कितने महान् पुरुषो की भावना काम कर रही थी । किन्तु जिस समय मेरा जन्म हुआ और मैने इस सामाजिक क्षेत्र मे आखे खोली, उस समय इस सम्मेलन की भूमिका तैयार हो चुकी थी । इसलिए हमारा प्रश्न भूमिका तैयार करने का नही था, अपितु भवन-निर्माण और मूर्तरूप देने का ही प्रश्न शेष था ।

हम एक ओर मूर्त स्वरूप की ओर व्यग्र मन से ताक रहे थे और दूसरी ओर सम्मेलन की विघ्न-बाधाओ को नष्ट करने के लिए सुरक्षा-पक्ति खडी कर रहे थे ।

रूढिग्रस्त उन तत्वो की ओर जो कि सम्मेलन को इज्जत के साथ असफल कर देने की भावना लिये हुए थे उनके प्रति भी क्रान्ति, सघर्ष की भावना को लेकर आगे बढ रहे थे ।

किन्तु यह बडी प्रसन्नता का दिन है कि हम उस क्रान्ति की पहली सीढी पर तो सफलतापूर्वक चढ गए । अब तो भविष्य का विचार करना है । क्या समाज की कोटि-कोटि भावना के बाद बने इस सघ के द्रोही को कोई स्थान देगा ? (नही, कभी नही, जनता की ओर से उत्तर) सम्पदाये, भिन्न-भिन्न नामावलिया, स्थानको पर भिन्न-भिन्न नाम हटाकर एक सघ का नाम रखना होगा, क्या समाज इसके लिए तैयार है ? (बिलकुल तैयार) 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ जिन्दाबाद' के नारो के बीच मे आचार्य श्री को श्रद्धाजलि देते हुए मैंने कहा—हमारे सघ की आत्मा कौन है ? आचार्य आत्माराम जी । और हमारे गण का ईश कौन है ? उपाचाय गणेशी लाल जी के जयकारो के तुमुलघोष मे मैंने अपनी ओर से उनका शासन अमर रहे की भावना व्यक्त करते हुए आशा और श्रद्धा-पूर्वक भावना और विनय के साथ नमस्काराजलि अर्पित की और अपना आसन ग्रहण किया ।

समन्वय की ओर

सादडी सम्मेलन ने मुनि जी के मस्तिष्क को समाज-निर्माण के भावी स्वपनो से भर दिया था। इन्दौर सघ का आग्रह था, चातुर्मास इन्दौर का स्वीकार कर लिया गया।

सादडी से राणकपुर मन्दिर देखने का अवसर प्राप्त हुआ। मन्दिर ससार मे वास्तुकला का अनोखा उदाहरण दीखता है। भारतीय वास्तुशिल्पियो ने दुर्गम पर्वत-घाटियो मे कैसे-कैसे धर्मस्थान मन्दिर एव मूर्तियो का निर्माण किया है, का अनुपम, मनोहरी एव विस्मयकारी स्वरूप देखना हो तो राणकपुर व आबू के जैन मन्दिर हैं।

सराग मुद्राओ का आकलन करना सरल है किन्तु वीतराग मुद्रा को जड पदार्थों मे उतार देना और प्रत्यक्ष की तरह साकार कर देना यह कलाकार की चमत्कारी साधना का प्रतिफल है।

राणकपुर मे जैनागम एव जैन वाड्मय के प्रकाण्ड पण्डित तथा पुरातत्व के गभीर निष्णात मुनि श्री पुण्यविजय जी म० से मुनिजी का लम्बा वार्तालाप हुआ। राणकपुर से पहाडी रास्ते उदयपुर, चितौड, मालवा के गाँव जावरा, रतलाम होते हुए चातुर्मास के निकट इन्दौर मे मुनिजी अपने गुरुदेव तथा सौभाग्य मुनि जी के साथ पहुँच गये।

सादडी सम्मेलन ने मुनि जी के तेजस्वी व्यक्तित्व ओजस्वी वक्तव्य तथा क्रान्तिकारी विचारो ने चारो ओर ऐसी धूम मचा दी थी कि चारो ओर मुनि जी का नाम सुनते ही स्वागतार्थ जनता बिना किसी भेदभाव के समुद्र की उत्ताल तरगो की तरह उमड पडती थी। यही हालत इन्दौर की थी।

मालवा की जनता ने मुनि जी के विचारो का बडा गहरा समर्थन किया और समूचे चातुर्मास मे हजारो की सख्या मे श्रोताओ तथा दर्शनार्थियो की भीड लगी रही। नई पीढी मे और सार्वजनिक जीवन मे मुनि जी के विचारो एव भाषणो ने एक नई आध्यात्मिक लहर पैदा कर दी।

यही कारण था कि इन्दौर चातुर्मास के बाद मुनि जी सोजत सम्मेलन के लिए पुन वापस जब गये है तो मालवा, मेवाड एव मारवाड की जनता ने उनके स्वागत मे अपने पलक-पावडे बिछा दिये।

सोजत सम्मेलन मे बम्बई सघ के आग्रह को मुनि जी ने स्वीकार कर लिया। पाली, शिवपुर, सिरोही, आबू, पालणपुर, अहमदाबाद, अकलेश्वर, बडौदा, सूरत से होते हुए मुनि जी बम्बई पहुँच गये।

सादडी साधु सम्मेलन ने सामाजिक नव निर्माण के अनेक विचार मुनि जी के मस्तिष्क मे भर दिये थे। क्रान्तिकारी प्रवचनो ने जैनसमाज मे एक उथल-पुथल पैदा कर दी, अनेको सघ मुनि जी के चातुर्मास के लिए आग्रह कर रहे थे।

इन्दौर का चातुर्मास मुनि जी के जीवन मे नया मोड दने वाला था। हजारो श्वेताम्बर, दिगम्बर एव स्थानकवासी नवयुवको को नई चेतना मिली। साम्प्रदायिक आग्रह से मुक्ति प्राप्त हुई। इन्दौर के सार्वजनिक जीवन मे कोई वर्ग, सम्प्रदाय ऐसा नही बचा जो मुनि जी के विचारा का समथक न बना हो। इन्दौर मे मुनि जी को आध्यात्मिक नेता की तरह मालववासी मानने लगे थे। यही कारण था कि इन्दौर मे आध्यात्मिक विकास मण्डल की स्थापना मुनि जी के उपदेशो से हुई और सभी वर्गों के मालववासी सम्मिलित हुए।

चातुर्मास की सम्पन्नता के बाद मुनि जी को सोजत साधु सम्मेलन मे आना पडा। सोजत आने के लिये पुन उसी मार्ग पर लौटना था। अतर इतना था कि इन्दौर चातुर्मास ने समूचे मालव को मुनि जी के लिये आकर्षण पैदा कर दिया था। मुनि जी जहाँ भी गये जनता स्वागत मे कतार बाँधे खडी थी। आध्यात्मिक प्रेम की कोई थाह नही थी।

सोजत मारवाड का नगर है। मालव और मारवाड के लोकजीवन, लोकसस्कृति और लोकव्यवहार मे काफी अतर है।

सादडी साधु सम्मेलन के बाद यह दूसरा सम्मेलन था। खूब साधु-सत उपस्थित हुए, विचार विनिमय हुआ।

सोजत से मुनि जी शिवगज सिरोही होते हुए विश्व के आठवे आश्चर्य कला की बेजोड मूर्ति, आबू जैनमदिर जा पहुचे।

भीलवाडा का जैन मन्दिर और अचलगढ मन्दिर मे प्रतिष्ठित १४४४ माग सोने मूर्तियाँ (जैसा बताया जाता है) अपने आप मे विचित्र है। दसवी शताब्दी मे महामान्य वस्तुपाल और तेजपाल ने १७ करोड एव १८ करोड सुवर्ण मुद्राये खर्च कर इन मन्दिरा का निर्माण कराया था।

आबू मे ३ दिन रहन के बाद बम्बई की ओर मुनि जी चल पडे। गुरुदेव छोटेलाल जी म० भी साथ चल रहे थे। यह सब उनके आशीर्वाद का फल था।

बम्बई प्रवास के अवसर पर मुनि जी के आध्यात्मिक चमत्कारो एव अनुभूतिपरक प्रभावशाली विचारो ने रास्ते मे दर्शनार्थ आने वाली बम्बई की जनता को मन्त्रमुग्ध कर दिया था। यही कारण था कि बम्बई पहुँचने से पहले बम्बई की जैन समाज मे मुनि जी के नाम की चर्चा हर आदमी की जबान पर होने लगी थी।

गुजरात, महाराष्ट्र एव पजाब से गये जैन समाज के लोगो के लिये यह एक असा-

धारण घटना थी कि जैन मुनि जी और उनमें इतने क्रान्तिकारी सार्वभौम विचार।

मुनि जी प्रारम्भ से ही राष्ट्रवादी रहे हैं। राष्ट्रीय अहिंसा का आदर्श मुनि जी के विचारो मे इतना ही है कि किसी भी राष्ट्र का इतना शक्तिशाली हो जाना कि उस पर कोई भी आक्रमण करने की जुर्रत ही न कर सके, यही राष्ट्र की सच्ची अहिंसा हो सकती है। क्योकि हिंसा करना पाप है, हिंसा पनपने देना महापाप है, यही कसौटी झूठ, चोरी व्यभिचार और सग्रह पर भी लागू हो जाती है। जैसे कि झूठ बोलना पाप है किन्तु झूठ को पनपने देना या उसको फैलने के लिए वातावरण बनने देना महापाप है। चोरी और व्यभिचार की भी यही बात है।

आशय केवल इतना है कि व्यक्ति से भूल हो जाना, स्खलना होना एक वैयक्तिक बात है किन्तु बुराई को समाज का सरक्षण मिल जाना बहुत खतरनाक है।

बम्बई में मुनि जी ने प्राणिरक्षा और मांसाहार निषेध के लिए नये कदम उठाये। उन्होने ३० जनवरी को गान्धी निर्वाण दिवस पर कसाईखाने बद करवाने का प्रस्ताव बम्बई नगर निगम से करवाया, फिर तो रामनवमी कृष्णाष्टमी, महावीर जयन्ती आदि ६ दिनो के लिए केवल बम्बई मे ही नही अपितु ६० म्यूनिसिपल कमेटियो मे कसाईखाने बद कराने के प्रस्ताव पारित कर मांसाहार को सार्वजनिक रूप से वर्षभर मे कुछ दिनो के लिए ही सही किन्तु सार्वजनिक रूप से निन्दित तो करा दिया। यह बात १९५३ की है। शाकाहार के लिए काम करने वालो को यह नया दिशा-दर्शन मिला।

गोरक्षा के लिए बम्बई गोरक्षा समिति का निर्माण किया। गोहत्याबन्दी तथा गो-सम्वर्धन दोनो कार्य एक साथ बम्बई से शुरू किये।

सर्वभाषा भाषी सम्मेलन के द्वारा मुनि जी भाषायी एकता लाना चाहते थे किन्तु भाषाविदो को राजनैतिक दल मे फँसा देख बम्बई मे सर्वधर्म सम्मेलन की स्थापना की। मुनि जी के विचारो मे भाषा और धर्म को निहित स्वार्थी लोग झगडे की जड बनाया करते है। उन्ही झगडो से साम्प्रदायिकता, सकीर्णता एव नफरत की भावना बढती है। आपसी टकराव होते है। सैकडो हजारो वर्षो से साथ रहने वाले लोग एक दूसरे के खून के प्यासे बन जाते हैं।

धर्म सम्मेलन मानवीय एकता का आन्दोलन है, साम्प्रदायिक मनोवृत्ति की महामारी को समूल नाश करने की अचूक औषधि है। यही कारण था कि बम्बई धर्म सम्मेलन के अवसर पर जो धर्माचार्य एव धर्मनेतागण आपस मे कभी एकत्रित नही हुये थे वे सब एक मच पर बैठ गये और धर्म के माध्यम मे विश्व बन्धुत्व के आदर्श को जमीन पर उतारने के लिए मूल सकल्प हो गये।

पालणपुर, अहमदाबाद, अकलेश्वर, सूरत होते हुए मुनि जी जब बम्बई के निकट पहुँचे तो बम्बई से दर्शनार्थ आने वालो का तांता लग गया। बम्बई का जैनसघ भारत मे सबसे बडा सघ है, वैसे भी गुजराती, काठियावाडी कच्छी, मराठी एव मारवाडी व पजाबी जैनो का बहुत बडा समुदाय बम्बई मे निवास करता है। जैन समुदाय मे तो साधु सम्मेलन के कारण मुनि जी की चर्चा तो बहुत होने लगी थी। इसीलिए बहुत आग्रह पर बम्बई वाले मुनि जी को बम्बई ला रहे थे।

मार्ग में समुद्र के ज्वारभाटे के अनेक दृश्य, मछियारो की बस्तियो मे धर्मप्रचार एव समुद्र की खाडियों को पार करते हुए मुनि जी बम्बई पहुँच गये । बम्बई स्थित पजाब जैन सभा के सदस्यो को मार्ग में मुनि जी की सेवा सान्निध्य का काफी अवसर मिला था और वे मुनि जी को आध्यात्मिक योगी और क्रान्तिकारी नेता के रूप मे मान चुके थे ।

बम्बई मे दो चातुर्मास मुनि जी के हुए । मुनि जी से बम्बई के पत्रकार, राजनेता एवं धर्मनेता बहुत प्रभावित हुए थे ।

इस कार्य मे सबसे बडा सहयोग मणिभाई दोषी का था । मुनि जी के विचारो को क्रियान्वित करने मे श्री दोषी और श्री जगन्नाथ जैनी के अप्रतिम सहयोग को कभी भुलाया नही जा सकता ।

प्रचार के क्षेत्र मे भी हरीश जैन के अविस्मरणीय योगदान को जैसे कभी तिरोहित नहीं किया जा सकता इसी प्रकार बम्बई के हजारो जैन भाइयो व बहनो का सहयोग भी नही भुलाया जा सकेगा ।

धर्मसम्मेलन की नीव भी बम्बई मे रखी गई और बम्बई से चलकर लोनावला में बलि विरोध का आन्दोलन भी चालू किया गया ।

लोनावला से ६ मील दूर कारला पहाडियो मे बहुत बडी-बडी विशाल गुफायें चौथी शती की बनी हुई है । वहा पर कोकणी लोग वर्ष भर में एक बार एकत्रित होकर हजारो पशुओ की बलि करते हैं ।

पशु-बलि-विरोधी भावना का जन्म भी मुनि जी के हृदय में एक स्वप्न से हुआ । दिवगत परममान्य मुनि जी चौथमल जी म० रात्रि के अतिम पहरो मे स्वप्न मे दिखाई दिये और उद्‌बोधन देने लगे, "सुशील ! चलो, और कारला गुफा पर होने वाली पशु बलि को बन्द कराओ । मैं तुम्हारे साथ हूँ ।" ये शब्द स्वप्न में मुनि जी को मिले । किन्तु मुनि जी कहते हैं कि आज भी वह दिव्य ध्वनि मेरे रोम-रोम मे प्रतिध्वनित हो रही है । मुनि जी प्रात काल होते ही गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर गुफा की ओर चल पडे और दो दिन के प्रयास से कुछ सफल हुये और अत मे गाडगे जी महाराज ने वह पशु बलि सदा के लिए बद करा दी ।

मुनि जी मानते हैं कि मनुष्य मे अनत शक्ति है, कास्मिक पावर है और जड-चेतन पर उसका गहरा असर डाला जा सकता है । लोनावला मे एक विचित्र घटना घटी कि दिनकर भाई (सैसन जज मुख्य न्यायाधीश) किसी पक्षी पर निशाना साध रहे थे । उधर से मुनि जी आ रहे थे, मुनि जी से नही रहा गया उन्होने जज साहब की बन्दूक पर हाथ रख दिया और कहा कि पक्षी पर बन्दूक नही चलेगी, हिंसा पाप है, हिंसा से बचना मनुष्य का धर्म है । पक्षी ने आपका कुछ बिगाडा नही अपितु आपके वातावरण को गुञ्जित करता रहा है ।"

जज महोदय ने टाल दिया और 'हाँ-हाँ' कहकर मुनि जी को वहा से भेज तो दिया किन्तु उनके चले आने के बाद जब बन्दूक का निशाना साधना चाहा तो बन्दूक ने चलने से इन्कार कर दिया । बहुत प्रयास करने पर भी बन्दूक नही चली तब जज महोदय को पक्का विश्वास हो गया कि बन्दूक मुनि जी ने बाँध दी है ।

जज महोदय मुनि जी के पास पहुँचे, कोठी लेकर गये 'बन्दूक दिखाई' आग्रह करके

हस्त स्पर्श करवाया और फिर क्या था बन्दूक चल पड़ी, काम करने लगी।

मुनि जी स्वयं असमजस मे पड़ गये कि यह क्या हुआ, किन्तु प्रकृति का विचित्र खेल है। जज महोदय चरणो मे पड गये, शाकाहारी बने, निरपराधी पशुओ का शिकार सदा के लिए छोड दिया।

लोनावला मे सर्पों की दुनिया का विचित्र परिचय हुआ। लोनावला मे सर्प बहुत है। प्रतिदिन किसी न किसी सर्पराज की मुलाकात मुनिजी से हो जाती। मुनि जी ने सर्पों के सम्बन्ध मे नई जानकारी प्राप्त की। सर्प का साक्षात्कार होते ही मनुष्य स्वय सर्प से काम हो जाता है अन्यथा सर्प भी प्रेमभरी अद्भुत दृष्टि से निहारते ही वशवर्ती हो जाता है।

मुनि जी ने तो भयानक सर्पराज को तीन बार छेडा भी, तीन बार ही सर्प फुकारता हुआ आक्रामक बना, किन्तु मुनि जी के नेत्रो मे नेत्र डालकर देखता और शान्त हो जाता।

मुनि जी का निश्चय है कि सर्प नेत्रो मे से पढ़ता है और उससे अनुमान करता है कि व्यक्ति क्या चाहता है। मुनि जी लोनावला से उज्जैन की ओर चल पडे।

*

●

नई उद्भावनायें

धर्म एव सम्प्रदायो को लेकर चलने वाली कुरीतियो और अन्ध परम्पराओ के विरुद्ध मोर्चा लेने की आदत ने मुनिजी को सरदार शहर मे चातुर्मास करने पर विवश किया। पारस्परिक जैन सम्प्रदायो मे भी कही-कही गहरा मन-मुटाव और अविश्वास का वातावरण रहता है—उसके दर्शन यहाँ हुये।

जनता की अपार भीड। छोटी-छोटी बातो पर जैन सम्प्रदायो मे आपसी छींटाकशी बहुतायत से परिलक्षित हुई। कर्मकाण्ड अथवा कोरे क्रियाकाण्ड के कारण हर सम्प्रदाय मे थोथा अभिमान, कपटाचार और असत्य भाषण की प्रवृत्ति को बढावा मिलता है।

सरदार शहर मे कितने लोग मुनिजी के पक्ष-विपक्ष मे साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के कारण बोले, किन्तु उनकी सत्यता, निर्भीकता एव स्पष्टवादिता का लोहा सभी तरफ अचूक एव अखड रूप मे स्वीकार किया जाता है।

कतिपय सकीर्णतावादी लोगो ने एक बात कही कि मुनि जी नाई से नख कटवाते हैं तो साधु कैसे ?

स्वसम्प्रदाय के लोगो ने आग्रह किया कि मुनिजी कह दे कि उन्होने नख नही कटवाये क्योकि अगर मुनि जी इनकार कर दे तो विपक्षियो को विरोध का अवसर ही नही मिलेगा- किन्तु मुनि जी ने तो भरे व्याख्यान मे उद्घोषणा कर दी कि नख कटवाये हैं।

नख कटवाने के पीछे शास्त्र की भावना श्रृगार प्रतिषेध है कि मनोवृत्ति की सकीर्णता से खीच-तान की जाती है ?

गृहस्थी की सेवा नही लेना- अत नाई से भी नख नही कटवाना। बात सही है, परावलम्बी जीवन अब न बने ? किन्तु यह कैसे सभव है कि साधु गृहस्थी से सर्वथा सेवा न ले—आप्रेशन, चिकित्सा-हड्डी मोच आदि सब इलाज गृहस्थी डाक्टर से ही कराना होगा और सब सत कराते भी है किन्तु जनता मे साफ बात नहीं की जाती, जिस के कारण अध-

विश्वास बढ़ता है। पारस्परिक द्वेष बुद्धि भी बढती है।

सरदार शहर से चातुर्मास के बाद तारानगर, हिसार, हांसी, रोहतक होते हुये—१९५७ मे दिल्ली पहुँचे।

× × ×

मुनिजी का डा० राजेन्द्र प्रसाद जी से बडा गहरा सम्बन्ध था। वह भी राजमहल मे संत की तरह निवास करते थे। कपडा फटा है, बटन लगे हैं या नहीं, उन्हें मालूम नहीं पडता था, किन्तु राष्ट्र के प्रति इतने जागरूक थे कि एक दिन आखों में आसू भर कर कहने लगे कि तिब्बत की पराधीनता का शाप तो हमारे सिर पर अवश्य चढा होगा। तिब्बत मे लोगो को कतल किया गया। चीन ने उन्हे पराधीन बनाया, उन का खून बहा और हम चुपचाप देखते रहे। मेरा देश, मेरे देश का सबसे बडा नेता और मैं राष्ट्राध्यक्ष होने के नाते साक्षी द्रष्टा की तरह यह सब पाप देखता रहा, यह पाप हमारे देश को खा लेगा और हमे इसका एक-न-एक दिन पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करना पडेगा।

उनकी आँखें सजल हो गई थी और वे अन्दर से अपनी मूक पीडा को व्यक्त करते हुए ग्लानि से भर गये थे।

× × ×

विश्व धर्म सम्मेलन मे प० जवाहरलाल नेहरू आने को तैयार नही थे और साथ मे खुला विरोध भी कर रहे थे। एक दिन डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने मुनि जी से कहा कि आप पण्डित जी से अवश्य मिल ले। उनका रुख धर्म-सम्मेलन-विरोधी है—अगर आप उन्हे अनुकूल नही बना सके तो हम मे से कोई भी नही जा सकेगा।

मुनिजी ने कहा कि पण्डित जी मुझे बुलावे तो मैं जाऊँगा, किन्तु मिलने के लिये मै स्वय कैसे कहूँ। तीसरे दिन पण्डित नेहरू जी की ओर से पत्र आया कि आप ९ बजे प्रात आकर मिल ले। वास्तव मे यह मुलाकात स्वय राजेन्द्र प्रसाद जी ने ही करवाई थी।

वार्तालाप अत्यन्त उग्र था, किन्तु परिणाम सुखद रहा। पण्डित जी चट्टान की तरह अड गए कि मै धर्म सम्मेलन मे नही जाऊँगा। मुनि जी अड गये कि आप को चलना अवश्य है!

दैवी भावना का एक क्षणिक प्रभाव इतना चमत्कारी निकला कि पण्डित जी मान गये कि अच्छा मै अवश्य आऊँगा। प० जी ने १७ नवम्बर १९५७ मे लाखो लोगो के सामने एक बात बडी विचित्र कही कि मैं सम्मेलन मे नही आना चाहता था लेकिन ऐसी कौन सी हस्ती है जो मुझे यहाँ खीच कर ले आई!

दैविक शक्ति का अपूर्व रूप है।

× × ×

सन् १९६२ की बात है। प० जी ने एक बार भेट-वार्ता के प्रसग मे रोष मे आकर कहा कि धर्म सम्मेलन से क्या लाभ है? अगर धर्म-सम्मेलन कुछ कर सकता है तो मास्टर तारा सिह को क्यो नही समझाते, वे एक ही रट लगाते है कि पजाबी सूबा बनायेंगे, अब वह उपवास करके बैठे हैं। मुनिजी आप कुछ कर सकते हैं?

मुनि जी ने देखा कि प० नेहरू करुणा एव मानवीयता के पुज थे। उनसे मास्टर

तारा सिंह की न बात मानी जाती थी और न ही उनके उपवास का दुख देखा जा रहा था। उन्होने कहा कि प० जी जहाँ राजनीति असफल हो जाती है वहा धर्म-नीति अवश्य सफल हो जाती है। मुनि जी की आकस्मिक पजाब यात्रा का कार्यक्रम बन गया। वे अमृतसर पहुँचे।

मास्टर तारा सिंह भी मिलने आये। वे भी अपने जीवन मे कभी जैन साधु के पास या जैन स्थानक मे नही आये थे। लम्बी बात हुई। मास्टर जी इतने प्रभावित हुए कि वे मान गये कि जब तक चीन और पाकिस्तान के युद्ध का खतरा है, पजाबी सूबे की माग नहीं करेंगे और उन्होंने पी०टी०आई० तथा अन्य सभी समाचार एजेंसियो और पत्र-सवाददाताओ को बुला कर उद्घोषणा कर दी कि मेरी मुनि जी से बात हो गई है और मैं पजाबी सूबे की माग तब तक नही करूँगा जब तक चीन और पाकिस्तान से युद्ध का खतरा है।

मुनि जी ने प० जी को फौरन पत्र लिखा कि धर्म-नीति सदा विजयी होती है। दस मिनट मे यह सारी समस्या सुलझ गई जिसके लिये आप भी और सारा राष्ट्र परेशान हो रहा था।

× × ×

प० जी चाहते थे कि धर्म सम्मेलन इस देश की सामान्य जनता को आपस मे जोडने का काम करे, हिन्दू-मुस्लिम सभी वर्गों को मन से मिलावे।

एक बार प० जी ने १९५७ मे धर्म सम्मेलन से पूर्व मुनिजी को बुलाकर कहा कि धर्म सम्मेलन किसी हाल (कमरे) मे या लाल किले मे कर लो। खुले मैदान मे मत करो, क्योकि आजकल धर्म के नाम पर लोग नही आते। रामलीला मैदान मे तो लाखो लोग चाहिये।

क्षण भर आत्मगत चिंतन कर मुनि जी ने कहा था कि आप देखेगे कि रामलीला मैदान मे बैठने की जगह मिलनी कठिन हो जायेगी, खचाखच भर जायेगा।

प० जी बुद्ध-जयती सम्मेलन मे जनता के केवल कुछ हजार लोगो की उपस्थित से क्षुब्ध थे।

पण्डित जी बोले, "मुनि जी आप मान जाइये, जनता नही आती है, सेठ अचल सिंह, सेठ गोविन्द दास, सभी सम्मेलन प्रबन्धको से पण्डित जी ने कहा कि मुनि जी धुन के पक्के है। वे मानते नही, आप उन्हे समझा दे कि सम्मेलन खुला न करें।"

मुनिजी ने कहा कि पण्डित जी एक साधु का चमत्कार तो देखे कि आत्मबल और दृढ इच्छा-शक्ति मे कितना अपूर्व रहस्य छिपा है।

सम्मेलन मे जब पण्डित जी आये, उस समय रामलीला मैदान अपार जनता से खचाखच भरा पडा था। पण्डित जी ने मुनि जी से कहा कि मैने मान लिया कि आप सही थे। इतनी जनता ऐसे जलसो मे, कोई विलक्षण बात अवश्य है।

मुनि जी जब बोलने के लिये खडे हुए तो पण्डित जी उनके भाषण का साराश डा० राधाकृष्णन् को इगलिश मे समझाते रहे और जनता के साथ लगातार १०-१२ बार ताली बजाते रहे। जब वे भाषण देकर बैठे तो उन्होंने सफल सम्मेलन की बधाई दी।

× × ×

और जो भी कोई पण्डित जी से मुनि जी के बारे में पूछता तो वह उनके तीन गुण बताते थे, बहुत बढ़िया वक्ता, बहुत बढ़िया संयोजक, बहुत बढ़िया नेतृत्व।

× × ×

डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने मुनिजी से पूछा, सम्मेलन पर कितना खर्च आया होगा। मुनिजी ने पूछा आपका अनुमान कितना है? बोले—दो से पांच लाख तक। मुनिजी ने कहा—केवल २२ हजार। क्योंकि सारा बोझ समाज पर बट गया।

सेवा करने वाले मेहमानो को अपने घर पर उतारने वाले भारतीय धर्म प्रतिनिधियों को ठहराने वालो ने सम्मेलन से कुछ नही लिया और देश-विदेश के प्रतिनिधि अपूर्व प्रशंसा के प्रमाण-पत्र देकर गये।

धार्मिक कृत्य तो समाज के सहयोग से ही होने चाहियें।

●

विश्व धर्म सम्मेलन

आज के मानव को जिम अपार कष्ट और घोर सकट मे से गुजरना पड रहा है उसका सामना कदाचित् ही कभी उमको करना पडा होगा। दो महायुद्धो की महारलीला उसकी आँखो के सामने हो चुकी है। दूसरी सहारलीला पहली से भी कही अधिक भीषण और व्यापक थी, जिनको उन्हे झेलना पडा, उनका हृदय उनके स्मरण-मात्र से काप उठता है। हीरोशिमा और नागासाकी पर किया गया अणुबम का प्रयोग मनव-इतिहास की सबसे अधिक कठोर दुर्घटना है जिसको ससार का इतिहास कभी नही भूल सकता। तीसरे शीत महा-युद्ध की काली घटाये भी निरन्तर उसके सिर पर मडरा रही है। उमके नाम पर महाविनाश की जो घातक सामग्री जुटाई जा रही है उसके कारण सारा ही विश्व बारूदघर-सा बनता जा रहा है। उसमे साधारणा से विस्फोट से भी जो महाविनाश होना सम्भव है उसकी कल्पना कर सकना कुछ कठिन नही है। परन्तु धन्य है मानव और धन्य है उसकी आशा, विश्वास, धैर्य तथा साहस, जिनके बल पर वह इस महाविनाश की अग्नि-वर्षा मे भी अपना जीवन निबाह रहा है और भविष्य मे भी निभाने की आकाक्षा रखता है। वह निरन्तर अपने मार्ग की खोज और उमका निर्माण करने मे लगा हुआ है। उसने इस ससार मे जब से आखे खोली तभी से वह इस जीवन-सघर्ष मे सलग्न है।

पहले महायुद्ध की सहारकारी ताडवलीला के गर्भ मे से ही उस राष्ट्रपरिषद् का जन्म हुआ था जिसने महायुद्ध से पीडित और त्रस्त मानव को नए जीवन की आशा प्रदान की थी। दूसरे महायुद्ध की कही अधिक घातक और व्यापक विनाश-लीला के गर्भ मे से ही सयुक्त राष्ट्र सघ का जन्म हुआ। आज तीसरे (शीत) महायुद्ध की कैसी भी घोर काली घटाये क्यो न मडरा रही हो, परन्तु यह भी स्वीकार करना होगा कि सयुक्त राष्ट्र सघ का नया सगठन पहले की अपेक्षा शाति और सुरक्षा के लिए कही अधिक बडा और प्रभाव-शाली सरक्षण है। उसमे युद्ध की चिंगारी को बुझाने की सामर्थ्य भी पहले की अपेक्षा

कहीं अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली है। यदि एक ओर विनाश की सामग्री का हिमालय का-सा ऊँचा अम्बार लगता जा रहा है, तो दूसरी ओर महान् आकाश की तरह मानव में वह शक्ति भी व्याप्त हो रही है जो उसकी चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार है।

पहले महायुद्ध के बाद इथोपिया जैसे छोटे राज्य पर परिषद् की आँखों के सामने वैसा ही बलात्कार होना सम्भव था जैसा कि कौरवो की सभा मे पाण्डवो के सम्मुख द्रौपदी का चीर हरण किया गया था, परन्तु आज उसकी पुनरावृत्ति यदि सम्भव नही तो कठिन अवश्य है। उसके विरुद्ध आज जबरदस्त आवाज उठाई जा सकती है और विश्व का लोकमत उसके लिए हाथ बढाने वाले को रोकने का साहस कर सकता है। कोरिया, हिन्द चीन तथा मिस्र और हगरी की घटनायें आज के मानव की बढ़ती हुई शातिप्रियता की स्पष्ट साक्षी हैं, भले ही उसमे अभी वह सामर्थ्य उत्पन्न नहीं हुई है, जो स्थायी शाति की सुदृढ नीव रख सके। फिर भी आज किसी छोटे-से-छोटे राष्ट्र की भी स्वतन्त्रता का सहसा अपहरण नहीं हो सकता। आज बडी-से-बडी और गम्भीर-से-गम्भीर समस्या के हल के लिए युद्ध के पर्याय के रूप मे आपसी बातचीत पर कही अधिक जोर दिया जाता है और राजनीतिक क्षेत्र मे भी पचशील तथा शातिपूर्ण सहअस्तित्व के धार्मिक तत्त्वो का प्रतिपादन विशेष आग्रह से किया जाने लगा है।

सयुक्त राष्ट्रसंघ की महापरिषद् द्वारा बिना विरोध शातिपूर्ण सहअस्तित्व के भारत के प्रस्ताव का स्वीकार किया जाना आशा की सुनहरी किरण कहा जा सकता है।

इस दृष्टि से यूनेस्को के प्रादुर्भाव की कहानी कही अधिक आशाप्रद और उत्साहप्रद है। युनेस्को इस समय सयुक्तराष्ट्र संघ की शाखासस्था के रूप मे काम कर रही है, विधिवत् उसकी स्थापना ४ नवम्बर १९२९ को २० देशो ने मिलकर इंगलैड में की थी। परन्तु उसके लिये परस्पर विचार और चर्चा १९४२ मे तब प्रारम्भ कर दी गई थी, जबकि महायुद्ध चरम सीमा पर था। इगलैंड का जीवन भी खतरे से खाली नही था और सारा यूरोप वन की तरह युद्ध के दावानल मे भस्म हो रहा था तब ९ मित्र देशो के शिक्षामन्त्री लन्दन मे मिले और उन्होने इस तरह के सगठन की आवश्यकता और सभावना पर विचार किया। काफी विचार-विनिमय के बाद १९४५ के नवम्बर महीने मे लन्दन मे एक सम्मेलन का आयोजन किया गया उसमे इसका नामकरण किया गया और विधान बनाया गया। उसके कार्य का माध्यम शिक्षा, विज्ञान और सकृति रखा गया।

समस्त मानव समाज को इन तीन आधारो पर एक ओर सयुक्त करने का सराहनीय प्रयत्न इस सगठन की ओर किया जा रहा है। प्रकारान्तर से इस सगठन का निर्माण करके यह स्वीकार किया गया है कि अर्थनीति और राजनीति मानव को एक ओर सयुक्त करने मे सफल नही हो सकी। अर्थनीति के कारण जिन पूजीवादी स्वार्थी और निहित औद्योगिक हितो का जन्म हुआ उन्होने मानव-मानव के बीच एक बहुत बड़ी और चौडी खाई पैदा कर दी। राजनीति के उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की आसुरी लालसा तथा राक्षसी महत्त्वाकांक्षा को पैदा करके जिस शोषण और उत्पीडन को जन्म दिया गया उससे परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, घात-प्रतिघात और हिंसा-प्रतिहिसा की दुर्भावना चारो ओर समा गई। अर्थ-

नीति और राजनीति का दिवाला पिट गया इसलिए उनको तिलांजलि देकर शिक्षा, विज्ञान तथा सस्कृति का सहारा लिया गया। शिक्षा, विज्ञान और सस्कृति पर भी पक्षपातपूर्ण स्वार्थों की एक भोडी तह जम गई।

शिक्षा का उद्देश्य मानव की स्वाभाविक शक्तियो का विकास न कर, एक-दूसरे राष्ट्र के प्रति विद्वेष एव अध-पक्षपात पैदा करना बना लिया गया। विज्ञान मानव की सेवा का साधन न रह सका। वह राजनीतिज्ञो के हाथ का निमित्त बन गया। इसी प्रकार सस्कृति भी एकता-सम्पादन करने का साधन न रह सकी और उसको विभिन्न जातियों तथा समाजो मे विद्यमान भिन्नता अथवा भेदभाव का प्रतीक मान लिया गया। फिर भी उसका वास्तविक रूप उसकी आँखो से ओझल नही हुआ, वह निराश होकर उनके उस स्वरूप को को स्पष्ट करने मे लग गया। उदाहरण के लिए शिक्षा मे इतिहास का मुख्य स्थान है और इतिहास की वर्तमान शिक्षा इतनी दूषित है कि वह केवल उन युद्धो अथवा महायुद्धो के विवरण का, सग्रह मात्र रह गया है। जिन्होने मनुष्य को मनुष्य का, समाज को समाज का और देश को देश का अथवा राष्ट्र को राष्ट्र का विरोधी अथवा शत्रु बनाया है। इन शत्रुता-पूर्ण काडो का वर्तमान इतिहास पुराने घावो को हरा-भरा बनाये रहने का ही काम करता है। इसलिए यूनेस्को की ओर से इतिहास के परिष्कार का कार्य बहुत बडे पैमाने पर शुरू किया गया है।

इतिहास के परिष्कार की आवश्यकता भी तब अनुभव की गई जबकि यह देख लिया गया कि इस प्रकार की पाठ्य पुस्तको और ऐसी ही अन्य पाठ्य सामग्री द्वारा बच्चों को परस्पर एक-दूसरी जाति मे मेल-मिलाप और भाईचारा पैदा करने मे सहायक न होकर परस्पर विद्वेष एव विरोध ही पैदा करती है। १९४८ मे इस सम्बन्ध मे एक पुस्तक प्रकाशित हुई। १९५० मे इतिहास और पाठ्य पुस्तको के सशोधन के सम्बन्ध मे एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस कार्य के लिए विभिन्न समितियाँ नियुक्त की गईं और उन्होने अपने सुपुर्द किए गए कार्य को बडी तत्परता के साथ किया। इनमे से दो या दो से अधिक देशो की वे समितियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हुईं जिन्होने एक-दूसरे के इतिहास सम्बन्धी साहित्य की छानबीन इस दृष्टि से की कि उनमे से परस्पर विरोधी, भ्रमपूर्ण और एक दूसरे पर आक्षेप करने वाले विवरण न दिए जाय।

फ्रास, जर्मनी, इटली तथा बेल्जियम और नारवे के इतिहास के अध्यापको ने अपने-अपने यहाँ के इतिहास की पुस्तको का परिशीलन इसी दृष्टि से किया। उन पर विचार करके के सही दृष्टिकोण देने का प्रयास किया गया। १९४७ मे अमेरिका की शिक्षा परिषद् ने इस बात की छानबीन की कि वहा की पुस्तको मे एशियाई सस्कृति, सभ्यता और जीवनस्तर के सम्बन्ध मे पश्चिम के उद्योग प्रधान दृष्टिकोण से विचार किया गया था जो वहाँ के लोगो मे पूर्व के लोगो के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की भ्रातियाँ पैदा करने और उनको गुमराह करने वाला था, इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के लोगो मे पूर्व के लोगो के प्रति अहभाव पैदा हो गया और उनमे अपने को बडा और दूसरो को हीन मानने की प्रवृत्ति घर कर गई। इसी नवीन दृष्टिकोण से मानव जाति का विस्तृत इतिहास भी यूनेस्को की ओर से लिखा जा रहा है। तात्पर्य यह है कि यदि वास्तव मे शिक्षा, विज्ञान और

संस्कृति के आधार पर मानव के संयुक्त परिवार की सुदृढ़ नींव डालनी अभीष्ट है तो उसके लिए इनके वास्तविक रूप को स्पष्ट करके अनुकूल भूमि तैयार करनी होगी और उसका तैयार किया जा सकना तब तक सम्भव नही है जब तक कि इतिहास और पाठ्यपुस्तको का पूरी तरह संशोधन न किया जाये।

आज के विज्ञान का चाहे कैसा भी दुरुपयोग क्यो न किया जा रहा हो परन्तु यूनेस्को की ओर से इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है कि विज्ञान किसी देश-विशेष अथवा राष्ट्र-विशेष की बपौती नही है। वह सम्पूर्ण मानवजाति की सम्पत्ति है, जिसका लाभ सबको समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। इसी भावना से प्रेरित होकर अणु-शक्ति से लाभ उठाने का अवसर सब देशो के लिए सुलभ करना आवश्यक समझा गया है जिनका यथेष्ट विकास तथा प्रगति नही हुई है और जो आधुनिक दृष्टि से पिछडे हुए हैं। इसी प्रकार विज्ञान को मानव के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है और वह सहार का निमित्तमात्र बना नही रह सकता।

यह अत्यत शुभ लक्षण है कि इन दिनो राजनीति की अपेक्षा सस्कृति को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा है और यह स्वीकार किया जाने लगा है कि सस्कृति के नाते समस्त मानव एक ही जाति के सदस्य हैं। देश, समाज तथा भूगोल की ऐसी ही अन्य सीमाए पारस्परिक सास्कृतिक सम्बन्धो के लिए बाधक नहीं बन सकतीं। राजनीतिक सम्बन्धो की तुलना मे सास्कृतिक सम्बन्धो पर अधिक भरोसा किया जाने लगा और सास्कृतिक सधियो का एक नया सिलसिला प्रारम्भ हो गया है। आपसी भाई-चारे के लिए सदियो के पुराने सास्कृतिक सम्बन्धो की खोज तथा छानबीन की जाने लगी है। उनके लिए इतिहास के पन्नो और पुरातत्त्व की सामग्री का विशेष अध्ययन एव विश्लेषण किया जा रहा है।

यूनेस्को के प्रादुर्भाव और उसके प्रयत्नो के इस विवेचन से यह प्रकट है कि मनुष्य ने आज भी हार मानना अथवा निराश होना नही सीखा है। वह थककर भी आगे बढता रहता है और गिर-गिरकर भी उठता रहता है। नए मार्ग के निर्माण मे वह हमेशा लगा रहता है। निराश होना वह जानता नही। प्रश्न यह है कि शिक्षा, विज्ञान तथा सस्कृति के क्षेत्र मे वह जो नया उद्योग या प्रयोग कर रहा है वह धर्म के क्षेत्र मे क्यो नही किया जा सकता ? धर्म के सम्बन्ध मे इतना निराश क्यो हो गया है ? क्यो उसने उसके सम्बन्ध में पराजयवादी मनोवृत्ति से काम लेते हुए उसको सदा के लिए तिलाजलि दे दी है ? आज के राजनीतिज्ञो ने यह क्यो मान लिया है कि राजकाज मे धर्म को अर्धचन्द्र देना ही श्रेयस्कर है ? प्राय सभी प्रगतिशील और विकासोन्मुखी राष्ट्रो ने एक स्वर से धर्मनिरपेक्ष आदर्श को सर्वोत्तम मान लिया है, धर्म को प्रगति और विकास के मार्ग मे सबसे बडी बाधा समझ लिया गया है। हमारे देश मे इसी आदर्श को प्रजातत्री सविधान मे अपनाया गया है।

ऐसा अकारण ही नही किया गया है। जिन घटनाओ की यह अवश्यभावी प्रतिक्रिया है उन पर कुछ गम्भीर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है और यह गम्भीर विचार ही विश्व धर्म सम्मेलन की मूलभूत प्रेरक भावना को जन्म देने वाला है।

आज राजनीति और अर्थनीति को जिन कारणो से दिवालिया मान लिया गया है वे सब कारण धर्म पर भी लागू होते हैं। यदि अर्थनीति और राजनीति के कारण मानव मे

स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी आसुरी लालसा पैदा होकर शोषण एव उत्पीडन की दुर्भावनाओ का जन्म हुआ है तो धर्म के नाम पर भी ऐसी दुर्भावनाए कुछ कम पैदा नही हुई। कभी सभी देशो मे धर्म का बोलबाला था और उसके नाम पर सभी देशो मे भीषण लडाइयाँ लडी गई। मानव, मानव के खून का प्यासा बन गया। धर्म युद्ध अथवा क्रुसेड के नाम से यरुशलम मे ईसा की कब्र के लिए कैसा भयानक नरसहार किया गया ! १२० वर्षों तक वह नर-सहार जारी रहा और धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उस महापुरुष की कब्र पर कब्जा करने के लिए लाखो की कब्रें बना दी गई, जिसने एक गाल पर चपत लगने पर दूसरा गाल आगे कर देने का उपदेश दिया था और जो शाति एव अहिसा का देवदूत था। धर्म का यह कैसा घोर पतन था !

इसी प्रकार रोमन—कैथोलिको और प्रोटेस्टेण्टो ने एक-दूसरे पर कौन से भीषण अत्याचार धर्म के नाम पर नही किए ? जापान मे बौद्धो और ईसाइयो मे कभी कैसी हिंसा प्रतिहिंसा मची हुई थी ? अरब के इस्लाम के अनुयायियो ने धर्मोन्माद मे क्या नही किया ? हमारे अपने ही देश मे एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदायो के अनुयायियो ने एक दूसरे के गले पर तलवार चलाने मे कभी कोई सकोच नही किया। शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध आदि सब एक-दूसरे के शत्रु बने रहे। एक के धर्म-स्थानो को नष्ट करके उनके स्थान पर अपना धर्म स्थान बनाने मे सारा पुरुषार्थ लगा दिया गया। राजा जिस धर्म का अनुयायी होता था प्रजा पर जबरन उस धर्म को थोपा जाता था। फिर प्रत्येक धर्म का अनुयायी अपने धर्म को ही सब कुछ मान कर दूसरे को मिथ्या मान बैठता था और इस भ्रान्त धारणा के कारण चारो ओर सघर्ष, अशाति, कलह, ईर्ष्या, द्वेष तथा वैमनस्य पैदा होकर समाज के जीवन मे कष्ट, क्लेश और अशाति का सचार होता रहता था। जिस धर्म को सुख का साधना माना गया था वही दुख का कारण बन गया।

व्यक्तिगत जीवन मे भी धर्म के कारण कुछ ऐसी भ्रममूलक भावनाये तथा धारणाए घर कर गई कि व्यक्ति का जीवन भी दुख, कष्ट और क्लेश का केन्द्र बन गया। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि धर्म की वास्तविक भावना सर्वथा लुप्त हो गई। वैदिक धर्म सनातन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम आदि अजायब-घर की भाँति नाना पथो, मतो तथा सम्प्रदायो के सग्रहालय बन गए। न विश्वास एक रहा, न धम-स्थान एक रहा, न धर्म न आराध्य देवी या देवता एक रहे और न धर्मग्रन्थ ही एक रह सके। धर्म के चिह्न भी ऐसे और इतने बन गए कि उन पर लाठियाँ चलनी शुरू हो गई। कठी, माला जनेऊ, चोटी, तिलक तथा ऐसे ही अन्य चिह्न सब भेदभाव के समर्थक बन गए। राम और कृष्ण के नाम पर भी विरोध की भावना प्रबल बन गई। धर्म के नाम पर कोई भी ऐसी चीज नही रही जो मानव-मानव मे सहानुभूति, सहृदयता और बधुभाव पैदा कर सकती। परिणाम यह हुआ कि मानव के हृदय मे से धर्म का महत्त्व मिट गया। उसने उसको सर्वथा निरर्थक मान लिया। व्यक्ति के जीवन मे से इस प्रकार धर्म के महत्त्व का अत होने पर समाज और राजकाज मे उसके महत्त्व के लिए कोई स्थान रहना सम्भव न रहा, भिन्न-भिन्न धर्म के अनुयायियो को अपना राग और अपनी-अपनी डफली बजाते देख राजनीतिज्ञो ने उनमे अपना पिंड छुटाने मे ही अपनी खैर मान ली।

देश के दुर्भाग्य-पूर्ण विभाजन के समय धर्म के नाम पर जो बीभत्स कांड हुए उनके कारण धर्म का रहा-सहा महत्त्व भी सर्वथा नष्ट हो गया। धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बहाई गई। घर, गाव व शहर जलाये गये। दुकानें और घर लूटे गए। कितनी ही माताओ की गोद खाली कर दी गई। पत्निया पतिविहीन तथा पति पत्नीविहीन कर दिए गए और लाखो को अपने बाप-दादाओ के घरो से अलग करके अनाथ और बेघर बना दिया गया। इन सारे कांडो को अपनी आखो से देखने वाले मानव के हृदय में धर्म के लिए कोई श्रद्धा, आदर अथवा निष्ठा कैसे रह सकती थी ? इसका जो परिणाम होना सम्भव था वही हुआ और हमारे देश मे भी राजकाज के क्षेत्र मे धर्म को अर्धचन्द्र दे दिया गया।

परन्तु धर्म के सम्बन्ध मे इसको अन्तिम निर्णय नही माना जा सकता। जीवन के अन्य क्षेत्रो मे पराजयवादी मनोवृत्ति से काम लेना हमको शोभा नही दे सकता। धर्म मे पैदा हुई अथवा धर्म के नाम से पैदा की गई बुराइयो को दूर न कर के धर्म को ही दूर कर देना मनुष्य की मनुष्यता के लिये शोभास्पद नही है। यदि वह परस्पर मैत्रीभाव पैदा करने के लिये पाठ्यसामग्री और इतिहास का सशोधन करते हुए नया इतिहास लिखने की भी सामर्थ्य, हिम्मत और विश्वास अपने मे रखता है तो धर्म के सम्बन्ध मे उसको ऐसा क्यो नही करना चाहिए और क्यो उसके सम्बन्ध मे सर्वथा निराश हो जाना चाहिए ?

धर्म का बहिष्कार न करके परिष्कार करने का काम सदा से ही होता आया है। मानव कमजोरियों का पुतला है। कमियाँ उसमे स्वभावत पाई जाती है। कभी भी किसी ने उसकी उन कमिया अथवा कमजोरियो के कारण मानव जाति को मिटा देने का विचार नही किया, अपितु मानव के सशोधन अथवा परिष्कार अथवा सुधार भी उसी कार्यक्रम से निरन्तर चला आ रहा है, धर्म का सशोधन उसका एक मुख्य अग है। उसमे भी उसको उसी विश्वास के साथ लगा रहना चाहिए। निराशा का कोई कारण इसलिए भी नही होना चाहिए कि मानव के जन्म का यह सिलसिला बन्द नही हो सकता और उसके जन्म के साथ उसकी कमियाँ और कमजोरियाँ भी जुडी हुई है। जब तक सृष्टि का यह सिलसिला जारी रहेगा तब तक कमियो और कमजोरियो को दूर करने का सिलसिला भी जारी रखना चाहिए और अपनी कमियो तथा कमजोरियो के कारण जब कि मनुष्य धर्म को विकृत करने मे भी पीछे नही रहता तो धर्म के परिष्कार का सिलसिला बन्द क्यो होना चाहिए ?

इतिहास साक्षी है इस बात का कि यह सिलसिला कभी भी बन्द नही हुआ। अनेक वेद, अनेक उपनिषद्, अनेक दर्शन और अनेक स्मृतियाँ तथा अन्य अनेक धर्मग्रन्थ इसी बात के सूचक है कि धर्म के शोध का यह शुभ कार्य सदा ही निरन्तर होता रहा है। श्रीकृष्ण, गौतम, महावीर, शकर तथा मध्यकालीन सतो और उनके बाद जन्म लेने वाले अनेक महात्माओ ने भी इस सिलसिले को निरन्तर जारी रखा। मानव की देह के समान मानव का मन और आत्मा भी विभिन्न प्रकार के रोगो के शिकार हो सकते हैं। शारीरिक रोगो को दूर करने के लिए अनेक प्रकार को दवाइयो अथवा औषधियो के प्रयोग की तरह आत्मिक व मानसिक रोगो को दूर करने के लिए अनेक प्रकार की औषधियो का प्रयोग निरन्तर होता रहना चाहिए और दोनो की शोध एवं परिशोध का कार्य भी निरन्तर होता रहना आवश्यक है।

आयुर्वेद के प्रयोग शारीरिक रोगो को दूर करने के लिए जैसे आवश्यक है वैसे ही मानसिक तथा आत्मिक रोगो के निवारण के लिए धार्मिक प्रयोगो की अनिवार्य आवश्यकता है। उनके शोध एव परिशोध भी वैसा ही आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है, अन्यथा पानी के रुक जाने से जैसे उसमे दुर्गन्ध पैदा हो जाती है वैसे ही जीवन के वे सब धार्मिक और सामाजिक क्रम भी दूषित हो जाते है जिनमे गतिहीनता पैदा हो जाती है। व्यापक रूप से धर्म पर भी यह तथ्य लागू होता है। इसी कारण उसके परिष्कार अथवा सुधार का काम निरन्तर होता रहा और वर्तमान तथा भविष्य मे भी होता रहना चाहिए। आश्चर्य यह देख कर होता है कि जीवन के साधारण-से-साधारण क्षेत्र मे भी इस वृत्ति से काम लेने वाला मानव धर्म के क्षेत्र मे उससे काम लेना नही चाहता और वह उसमे जडता तथा मूढता का दुराग्रह करने लग जाता है। एक किसान या माली अपने खेत और बगीचे मे निरन्तर निरायी करता रहता है और फलत घास व जडी-बूटियो को उखाड कर नष्ट करने मे लगा रहता है।

साधारण-से-साधारण मनुष्य भी पुराने कपडो को बदल कर नए कपडे पहनता रहता है और पुरानो को धोना आवश्यक समझता है। परन्तु धर्म के सम्बन्ध मे इस मनोवृत्ति से काम नही लिया जाता।

यह धर्म की सबसे बडी विजय है कि जो महापुरुष इस काम के लिए प्रगट हुए उन सभी को धार्मिक महापुरुष मानकर उनकी पूजा की गई। वास्तव मे ऐसा होना नही चाहिए था, क्योकि प्रत्येक महापुरुष ने अपने से पहले प्रचलित धार्मिक विश्वासो, रूढियो तथा परम्पराओ को परिष्कृत करने का जो महान् कार्य किया उसके कारण उस समय के धर्मपरायण लोगो ने उसको नास्तिक कहने मे सकोच नही किया। परन्तु शीघ्र ही उसकी आस्तिकता की छाप लोगो पर ऐसी जम गई कि उसको धर्मावतार तथा धर्म सस्थापक मानकर पूजा जाने लगा। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण हिन्दू समाज मे सबसे अधिक पूजे गए और धर्मावतार माने गए। इतना ही नही गीता के दूसरे अध्याय मे वेद और वैदिक कर्मकाड का खडन करने के लिए भी उनको बाह्य कहना पडा। कारण उसका यह था कि वैदिक धर्म की वास्तविकता को भुलाकर वेदो को एक वाद बना लिया गया और उस वाद के आग्रही लोगो ने 'ससार मे और कुछ नही है, 'अर्थात् अन्य सब मिथ्या है' का अभियान करना शुरू कर दिया। उन्होने वैदिक कर्मकाण्ड को एकमात्र भोगैश्वर्य की प्राप्ति का साधन बना लिया। ऐसे वाद कर्मकाण्ड का प्रतिवाद करना ही श्रीकृष्ण के लिये अनिवार्य हो गया। यही स्थिति अन्य धार्मिक नेताओ की भी है।

भगवान् महावीर स्वामी के समय मे वैदिक धर्म ३६३ शाखा-उपशाखाओ मे बँट गया था। उनको उन दिनो मे अन्यतीर्थी अथवा प्रावुदुक कहा जाता था। महावीर ने उन सबका समन्वय करके फिर से धर्म की प्रतिष्टा की, परन्तु उनके बाद जैन धर्म भी मुख्यत दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरह पथ के चार भेदो और उनके अतर्गत अनेक उपदेशों मे बँट गया, इसी प्रकार बौद्ध धर्म मे भी अनेक शाखाए व उपशाखाए फूट निकली, न मालूम कितने धर्म उस समय देश मे फैल गये होंगे। धर्म के नाम से किए गए विकार और उसके दुरुपयोग को उसका परिष्कार किए बिना दूर नही किया जा सकता। मध्यकालाब

सतो ने भी धर्मान्धता के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया, और तत्कालीन जातपात आदि को उन्होने जडमूल से मिटाने मे अपने को लगा दिया।

मानव को मानव से अलग करने वाली किसी भी धार्मिक भेदमूलक भावना को उन्होंने प्रश्रय नही दिया। लेकिन मानव के साथ उसकी अंध धारणाए और अध भावनाए कुछ ऐसी जुडी हुई हैं कि वह धर्म के प्रकाश पर उनका आवरण डालकर उसको धुधला बनाने मे लगा ही रहता है और सत महापुरुषो को अपना जीवन उस मिथ्या आवरण में लगा देना पडता है। मानव की कमजोरी और महापुरुषो के इस मिशन का क्रम इतिहास मे निरन्तर मिलता है। वर्तमान मे इस मिशन की कही अधिक आवश्यकता है। धर्म को जितना इस समय विकृत किया गया है उतना पहले कदाचित् ही कभी किया गया होगा। उसके नाम पर छल-कपट करने मे भी पराकाष्ठा कर दी गई है। वैसे अपने विशुद्ध रूप मे भी उसके कितने नाम, कितने रूप और कितने भेद पैदा कर दिए गए हैं।

२२०० से कही अधिक धर्म के नाम व रूप बताए जाते हैं। ७०० से कही अधिक उसके लक्षण अथवा व्याख्याए उपस्थित की जाती हैं। उसके रूप और व्याख्या को स्पष्ट करने वाले दर्शनो की भी सख्या १२०० से कम नही। ऐसी स्थिति मे उसके सम्बन्ध मे विचार कर साधारण बुद्धि मानव के सम्मुख कुछ निश्चित मार्ग, रूप अथवा नाम उपस्थित करना आवश्यक है। विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन इसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य से किया गया है।

एशिया विभिन्न धर्मों और धार्मिक सस्कृतियो की क्रीड-भूमि है। भारत एशिया का केन्द्र बिन्दु अथवा आत्मा है। सम्भवत इसी कारण उसको धर्मभूमि कहा गया है। धर्म के प्रादुर्भाव तथा परिष्कार का जो काम निरन्तर धर्मभूमि भारत मे हुआ है वह कही और नही हो सका। यहाँ के ऋषि, मुनि, सत-साधु, तीर्थंकर, अवतारी, महापुरुष तथा अन्य धर्मात्मा, महात्मा जीवन भर इसी कार्य मे लगे रहे हैं। उन्होने धर्म के परिष्कार के लिए अपने महान् जीवन को वैसे ही एक प्रयोगशाला बना दिया, जैसे वर्तमान युग के महान् सत, महात्मा गाधी अपने जीवन को सत्य एव अहिंसा की प्रयोगशाला कहा करते थे।

धर्म के ये दोनो तत्त्व उनसे पहले भी विद्यमान थे। परन्तु मानव उनका सही प्रयोग करना भूल गया था। उस प्रयोग का उन्होंने एक उज्ज्वल उदाहरण अपने जीवन मे उपस्थित किया। राजनीतिक क्षेत्र मे सत्य (सत्याग्रह) तथा अहिंसा (अहिंसात्मक असहयोग) के प्रयोग को सफल बनाकर और उनके द्वारा अपने देश की स्वतन्त्रता का सम्पादन करके उन्होंने हिसा के प्रतिहिंसा तथा घात, प्रतिघात मे आँखे मूद कर लगे हुए वर्तमान ससार के सम्मुख एक उच्चतम अनुकरणीय धार्मिक आदर्श उपस्थित किया। हमारे महान् देश का इतिहास ऐसे धार्मिक महापुरुषो की अटूट श्रृखला से ओत-प्रोत है। कभी इस कार्य पर—'वादे-वादे जायते तत्त्वबोध '—की उक्ति चरितार्थ होती थी और धर्म-सम्बन्धी तत्त्व की खोज के लिए बडे-बडे धार्मिक वादो अथवा विचारो का आयोजन किया जाता था। 'उस्त-र्केण अनुसधते स धर्म वेद नेतर '—की उक्ति इसी बात की द्योतक है कि धर्म को सदा ही तर्क की कसौटी पर कसा जाया करता था। इस प्रकार उसका शोध अथवा परिशोध निरतर होता रहता था। परन्तु यह वाद वितडावाद और यह तर्क कुतर्क का रूप धारण नही करता

था। प्राय समस्त भारतीय साहित्य मे इस प्रकार के तक और वाद होने का उल्लेख पाया जाता है।

महाभारत मे न केवल गीता का आख्यान ही श्रीकृष्ण के मुख से इस उद्देश्य से करवाया गया है किन्तु भीष्म पर्व और शाति पर्व म भी धर्म का आख्यान भीष्म पितामह के मुख से करवाया गया है।

बौद्ध-काल मे अशोक, कनिष्क और हर्षवर्धन के समय मे अनेक धर्म सम्मेलन होने का उल्लेख मिलता है। शकर और मडन-मिश्र के वाद का भी यह उद्देश्य था। प्राचीन समय के शास्त्रार्थ तत्त्व-बोध इसी दृष्टि से होते थे। सम्राट् अकबर ने दीने-इलाही का सूत्र-पात करने के लिये धर्म सम्मेलन का आयोजन किया था। जो धार्मिक उत्सव, सम्मेलन अथवा तीर्थ यात्राए केवल एक रूढि या परम्परा रह गई हैं उनका वास्तविक उद्देश्य धर्म की शोध अथवा परिष्कार करना ही था। कुम्भ और अर्धकुभ सरीखे समारोह पुरातन काल के उन धर्म महासम्मेलनो की केवल छायामात्र रह गए जिनमे सभी सम्प्रदायो के आचाय अथवा नेता मिलकर धर्म की मीमासा और उसकी छानबीन करके देश-काल के अनुसार नवीन व्यवस्थाए दिया करते थे। धर्माचार्यों और धर्मगुरुओ का वास्तविक कार्य नई व्यवस्थाए देकर धर्म को काल तथा देश के अनुसार सदा नया रूप देते रहना था।

आज की तरह वे केवल पुरानी रूढियो, परम्पराओ और अध-विश्वासो के प्रहरी न बने रह कर उनको समाज मे बद्धमूल करने और उसको जड व मूढ बनाने का कार्य नही किया करते थे। वे उसकी प्रगतिशीलता एव विकास के धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे अग्रदूत होते थे। परन्तु मानव का यह सबसे बडा दुर्भाग्य है कि उन अग्रदूतो के सदियो के प्रयत्न उसकी कमजोरी पर विजय न पा सके और उसकी कमजोरी सदा ही उन पर विजय प्राप्त करती रही।

अपनी सकीर्ण अधभावना से वह उनके नाम पर हमेशा ही नए धर्मों, नए सम्प्रदायो, नए मतो तथा नए पथो को जन्म देता चला गया। आज इसी कारण चारो ओर नाना प्रकार के धर्मो, सम्प्रदायो, मतो व पथो का माया-जाल बिछा दीख पडता है। उसका देखकर साधारण जन का माथा धर्म से ही फिर जाता है और वह सबसे विमुख होकर नास्तिकता की शरण ले लेता है। यह धर्म की सबसे बडी पराजय है।

शास्त्रार्थो का जो नया सिलसिला शुरू किया गया उसका उद्देश्य तत्त्व की खोज करके धम का परिशोध करना नही रहा। उनमे वितण्डावाद अथवा कुतर्क का सहरा ले कर एक-दूसरे को नीचा दिखाने और अपने अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताया जाने लगा। वे मानव को और भी अधिक पथभ्रष्ट करने का निमित्त बन गये।

आज युग कुछ वदल रहा है। वह विभिन्नता मे एकता के दर्शन करना चाहता है। सह-अस्तित्व एकता के दर्शन करना चाहता है। सह-अस्तित्व के जिस सिद्धान्त को राजनीतिक क्षेत्र मे अगीकार किया जाना आवश्यक हो गया है। यह माना जान लगा है कि भिन्न-भिन्न मत, विचार, विश्वास, आराध्य और धर्म-ग्रन्थ रखते हुए भी एक लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न किया जा सकता है। सब धर्मों के प्रति समभाव रखने का यही अभिप्राय है। इसी का दूसरा नाम है समन्वय। इसीलिए आज समन्वय और समभाव की दृष्टि से विश्वधर्म-

सम्मेलन किये जाते हैं। पिछले तीन-चार वर्षों से इन का जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ उसी का परिणाम दिल्ली का आयोजन था।

जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज को इस नवीन क्रम के सूत्रपात करने का श्रेय एव यश प्राप्त है। इस सम्बन्ध मे आपकी दृष्टि बिलकुल स्पष्ट है। बम्बई मे पहले आपने सर्व-धर्म-सम्मेलन का इसी दृष्टि से आयोजन किया था। उन दिनो मे राज्यो के पुर्ननिर्माण की समस्या के कारण विभिन्न भाषाओ के प्रश्न ने बड़ा विकट रूप धारण कर लिया था।

श्री मगन-भाई दोष और श्री जगन्नाथ जी जैन ने बम्बई के आयोजन को सफल बनाने मे रात-दिन एक कर दिया। बम्बई के तत्कालीन मुख्यमत्री श्री मोरारजी देसाई की भी सम्मेलन के साथ पूरी सहानुभूति रही और उन्होंने ही सम्मेलन का उद्घाटन सम्पन्न किया था। मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने उस सम्मेलन मे सदेश के रूप मे जो भाषण दिया था वह आज भी वैसा ही महत्त्वपूर्ण है। उसमे मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध मे अपनी उदात्त भावना को प्रगट करते हुए सम्मेलन के उद्देश्य और विश्व के प्रति एशिया तथा भारत के दायित्व पर भी विशेष प्रकाश डाला था। उस महत्वपूर्ण भाषण को यहा उद्धृत करना अत्यन्त आवश्यक है। उस प्रभावशाली और महत्वपूर्ण भाषण मे मुनि जी ने कहा था कि ' मेरा विश्वास है कि आत्मशान्ति के लिए यदि हम धर्म को आवश्यक समझते हैं तो विश्व शाति के लिए उसका समन्वय भी अनिवार्य है।"

मनुष्य के जीवन की तीन आवश्यकताएँ हैं, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक। शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय और सामाजिक नेता नाना प्रकार के प्रयत्न करते हैं। मानसिक और बौद्धिक तृप्ति के लिए साहित्य—निर्माताओ की साधना है, उसी प्रकार आत्मिक शान्ति के लिए धर्मात्माओ की नैतिक प्रेरणा निरन्तर अपेक्षित है।

पात्रता के अनुरूप धार्मिक क्रियाये भिन्न-भिन्न रहेगी,पर हमारे लक्ष्य की कसौटी भावो की विशुद्धि ही रहेगी। एक तरफ परम्परा के मोहवश विज्ञान का विरोध दिखाई देता है तो दूसरी तरफ भौतिक आविष्कारो की चकाचौध मे धर्म के प्रति अरुचि बढती जा रही है।

मुझे दोनो ही अभीष्ट नही हैं। विज्ञान के विरोध से हम यथार्थ और स्वार्थ से अनभिज्ञ रह जाते है और धर्म के विरोध से परार्थ और परमार्थ के आनन्द से वचित रह जाते है। इसलिए सघर्ष का मूल तो ऐकान्तिक दृष्टि है, उसे छोडकर निश्चय और व्यवहार, द्रव्य और भाव, बुद्धि और श्रद्धा का समन्वय करने वाली अनेकान्त दृष्टि ही जीवन को पूर्ण बना सकती है।

त्यागी बने, पर लोक-सेवा को पाप न समझे। अहिंसक बने, पर रक्षण को पाप न समझे। अपरिग्रही बने, पर दान को पाप न समझे। आत्म-गौरव रखे, पर विनय को पाप न समझे। इस प्रकार द्वन्दों का रहस्य समझ कर सर्वत्र समभाव की दृष्टि रखना ही धर्म का लक्ष्य है।

निर्ग्रन्थो के प्रवचन का एक मात्र धर्म के सम्बन्ध मे अमर उद्घोष—

"वत्थुसहावो धम्मो।"

अर्थात् "स्वभाव ही धर्म है।" धर्मके लिए बडे-बडे ग्रथ अनिवार्य नही हैं, अन्तरात्मा की ध्वनि ही हृदय में धर्म का स्वरूप प्रकट करती है। अग्नि को किस ग्रथ ने ज्ञान दिया है कि "तुम ज्योतिष्मान् बनी रहो। जल को किस पुराण ने पढ़ाया है कि तुम प्यास बुझाओ। श्वान ने किस श्रुति का सदेश पाया है कि तुम जिसके अन्न का भक्षण करते हो उसके घर का रक्षण करो। बिल्ली को किस बायबिल ने बताया है कि चोरी से दूध पीते समय डरो। सिहनी ने किस शास्त्र का स्वाध्याय किया है कि जिससे वह अपने पुत्र के प्रति अहिंसक बनी रहती है। इन सब उदाहरणो से स्पष्ट है कि धर्म की जानकारी अपनी आत्मा की आवाज़ सुनने से ही हो सकती है।

जब मनुष्य ग्रन्थो का मोह छोड कर निर्ग्रन्थ आत्मा की आवाज़ सुनेगा, तब उसे राग-द्वेष न होगा, जैसा कि जैन आचार्य ने कहा है कि—

"पक्षपातो न मे वीरे न च द्वेष: कपिलादिषु
युक्तिमद्वचन यस्य कार्य तस्य परिग्रह ॥"

अर्थात् महावीर मे मेरा पक्षपात नही है, कपिलादि आचार्यों से मेरा द्वेष नही है, युक्ति-युक्त और सत्यता जिसकी वाणी मे है वही मुझे स्वीकार्य है।

इसलिए मतभेद रहे, पर उस कारण से आनन्द की वृद्धि मे रुकावट नही होनी चाहिये।

जैनाचार्यों ने विचार-स्वातन्त्र्य का विरोध नही किया। इतना ही नही, भिन्न-भिन्न अपेक्षाओ से परस्पर विरोधी दृष्टियो को भी प्रामाणिक स्वीकार किया है। दुराग्रह को ही मिथ्यात्व माना जाता है और निराग्रही वृत्ति ही सम्यक्त्व का मूल है। दार्शनिक समन्वय के इस अनेकान्त सिद्धात को हम राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओ को सुलझाने मे भी प्रयुक्त कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारे आचार-विचार, प्रेम और सेवा से भरी हुई अहिंसा तथा विवेक और विज्ञान का प्रकाश करने वाले सत्य के आधार से निर्धारित किए जाने चाहिए।

श्रुतियो और उपनिषदो मे तथा सूत्रो और पिटको मे दूसरो का विरोध न करते हुए आत्म-सयम को ही धर्म साधना माना है। महावीर स्वामी ने आज्ञा दी है कि—"अप्पाणमेव जुज्झाहि।" उपनिषदो मे कहा है कि—"तेन त्यक्तेन भुजीथा।" ऋग्वेद का वाक्य है कि—"त्यागेन एक एव अमृतं तत्वमानुष।" सबका स्वर एक ही है कि "त्याग ही शाति और अमरता प्रदान करता है।"

बुद्ध, ईसा, जरथुस्त और मुहम्मद के अन्तस्तल मे प्रवेश करेंगे तो हमे आनन्द की वद्धि के लिए सब का लक्ष्य समर्पण ही मिलेगा। अगर हम सर्वत्र शान्ति और सुखो का साम्राज्य चाहते है तो हमे अपने विविध स्वार्थों का बलिदान करने के लिए कटिबद्ध रहना होगा।

सर्वधर्म परिषद् सरीखे आयोजनो से हमे साम्प्रदायिक सहिष्णुता तथा पारस्परिक सद्भावना बढाने का सहज अवसर मिलता है जिससे अखण्ड मानवता की स्थापना के योग्य भूमिका बन सके।

हमारे एशिया महाद्वीप पर ही सबसे अधिक उत्तरदायित्व है कि वह युद्ध-शान्ति के

लिए सांस्कृतिक सम्मेलन का वातावरण तैयार करे। एशिया ही अनेक धर्मों का क्रीडागण रहा है इसलिए धर्मपरिषदो के द्वारा उसे ही युद्ध का बीज मिटाने मे अग्रगण्य बनना चाहिए। भारत-चीन मैत्री इस पवित्र उद्देश्य को सफल करने मे सहायक सिद्ध होगी। एशिया के सब धर्मों का समन्वय अन्त'राष्ट्रीय ऐक्य का आधारभूत स्तम्भ बनेगा जो यूरोप, अमेरिका आदि देशो की महत्वाकाक्षा को मर्यादित करके सर्वत्र प्रेम का वातावरण बढायेगा।

अगर हम गम्भीरता से विचार कर तो सभी देश शान्ति चाहते हैं, युद्ध किसी को प्रिय नही है, परन्तु परिस्थितिवश विश्व-जीवन मे ऐसी विसगतिया आ गई हैं कि बिना इच्छा के भी उन्हे युद्ध के लिए सन्नद्ध होना पडता है।

यह परिषद अशात विश्व को शान्ति का सदेश देकर एक समन्वयात्मक व्यापक धर्म की दृष्टि दे सका तो व्यवस्थापको का प्रयत्न सफल समझा जायेगा।

भाषाई आधार पर राज्यो के निर्माण के सिद्धान्त के स्वीकार किए जाने से प्रत्येक प्रान्त अपनी-अपनी भाषा का राग अलापने और डफली बजाने मे लगा हुआ था। बम्बई इस बात का प्रधान केन्द्र था। महागुजरात और महाराष्ट्र की माँग के कारण भी भाषा की समस्या दिन-पर-दिन टेढी हो रही थी। इन विकट राष्ट्रीय परिस्थितियो मे मुनि जी ने सर्व-भाषा सम्मेलन करके इस राष्ट्रीय समस्या का कोई हल ढू ढ निकालने का विचार किया। परन्तु शीघ्र ही आपने यह अनुभव किया कि भाषा की समस्या की तह मे भी धर्म की वह समस्या मौजूद है जिसके कारण देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ और भविष्य मे भी और अधिक विभाजन होने का सकट विद्यमान है। इसलिये आपको सर्वभाषा सम्मेलन के स्थान पर सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करना अधिक उचित और उपयोगी प्रतीत हुआ। आपके सरक्षण मे बम्बई मे पहला सर्वधर्म सम्मेलन हुआ।

उससे अगले वर्ष १९५५ मे आपने उज्जैन मे चातुर्मास किया और भारत का केन्द्र और अति प्राचीन सास्कृतिक स्थल होने से आपको वहाँ सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करना अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ। उस समय मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रगट करते हुए कहा था कि यदि विश्व, शान्ति चाहता है तो उसे मानवता, सहिष्णुता तथा अधिकार-मर्यादा और सयम का भाव रखना होगा, यह दिव्य सदेश मानव को धर्म ने दिया है। विश्व-शान्ति के लिए सार्वभौम राज्य नही, अपितु सार्वभौम धर्म की आवश्यकता है। आत्मा का शाश्वत सगीत धर्म ही ससार को शान्ति दे सकता है। इसमे कुछ भी सन्देह नही है। धम के क्षेत्र मे लिग-भेद अथवा देश-भेदो को कोई स्थान नही। मानव जाति एक है, उसका स्वभाव एक है, इसलिए ससार के तमाम धर्मों ने मानव जाति को एक ही कुटुम्ब माना है और सभी मानव गोरे, काले उसके एकमात्र सदस्य है। प्रेम, शान्ति, सद्भावना, सहिष्णुता, मित्र-भाव ही सभी धर्मों को मुख्य विशेषतायें रही हैं।

मनुष्य पर शासन उसके विचार करते है, धर्म ने मानव के विचारो को मोड दिया है, दैवी गुणो के प्रति आकर्षण दिया है।

सम्भव है, विचार-विभिन्नता सघर्ष का कारण बनी हो किन्तु श्रमण महावीर का अनेकान्तवाद उन्ही आशिक सत्यो को अखड सत्य की ओर ले चलने मे समर्थ है। बुद्ध का विभज्यवाद, शकराचार्य का समन्वयवाद, ईसा का अनुग्रहवाद, तथा मुहम्मद का प्रत्येक कौम

के महापुरुषो की परमात्मीय संदेशवाहक मानने का श्रद्धावाद इसी धार्मिक, वैचारिक तथा सैद्धान्तिक महासमन्वय के गान का आरोह कर रहा है।

महात्मा गाधी की महाचाबी सत्य, अहिंसा, कबीर की गुण-पूजा, सत नानक की बन्धु-भावना, तथा रामकृष्ण परमहस का मैत्री-भाव उसी धर्म की उद्घोषणा कर रहा है जो अनेक रूपो मे रहकर भी एक है, ध्रुव और शाश्वत है।

धर्म का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर बहा है। धर्म ने विश्व को अपनी गोद मे आबद्ध किया है। एशिया, धर्मों की जन्मभूमि है। एशिया के तमाम धर्मों के प्रवर्तको का सार मैं यह समझता हूँ कि मानव-प्रेम, अहिंसा को अपने जीवन का विज्ञान शास्त्र समझे और बाह्य जगत् से लेकर अन्तरग जगत् तक के समस्त अशिव, अभद्र पाप धो देने मे प्रयत्न-शील रहे।

क्या यह सदेश मानव को शान्ति दिलाने मे अपर्याप्त रहेगा ? मैं इस निष्कर्ष तक पहुँचा हूँ कि मानव के विराट् विश्व की शान्ति धर्म के अन्तरग मे ही अवसिक्त है।

भारत की सार्वभौम सस्कृति उस परम शान्तिमय धर्म से अनुप्राणित है। भारत की सदा से यही शान्ति-परम्परा रही है। भारत ने समस्त विश्व मे अपने धर्म-दूत तो भेजे किन्तु किसी देश पर सैनिक नही भेजे और न ही कभी कोई आक्रमण की योजना बनाई। आज समस्त धर्म के माननेवाले धार्मिको मे सहिष्णुता, परस्पर भ्रातृभाव तथा आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने का काम भी भारत को ही करना चाहिए।

जैसे महाभारत-युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र के स्थान को चुना गया था, उसी प्रकार स्थान की खोज मे उज्जैन को इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त माना गया है। क्योकि—

उज्जैन मे कृष्ण का सादीपनी आश्रम, भगवान् महावीर का दिव्य घोष, बुद्ध का प्रेम वर्णन तथा सिद्धसेन दिवाकर की न्याययुक्तियाँ तो प्रस्फुटित हुई ही हैं, कालिदास की कला का सौन्दर्य-प्रसाधन भी यहाँ ही किया गया है। जैन, वैदिक तथा बुद्ध की विचार-धाराओ का यह सगम-स्थल ही ससार के तमाम धर्मों के मिलन का पवित्र स्थान रहेगा, यह मेरा विश्वास है।

यह सम्मेलन धार्मिको मे उदारता, सहिष्णुता, सहृदयता के भावो को पनपायेगा, भौगोलिक, सामाजिक तथा वर्णगत सीमाओ मे पिछडे मानव-हृदय को मानव सार्वभौम सस्कृति का अमृत तो पिलायेगा ही, किन्तु साथ ही आध्यात्मिक दर्शन के सूक्ष्म सत्य को भी वैज्ञानिक जगत् के भौतिक आविष्कार के सामने रखने मे समर्थ हो सकेगा।

मुझे पूर्ण आशा है कि अखिल भारतीय सर्व-धर्म-सम्मेलन ऐसा आदर्श सामने रखेगा, जिससे अखिल भारत मे क्या सारे विश्व मे विभिन्न धर्मों के अनुयायी देश व जाति के भेद-भाव को छोडकर भौतिक, बौद्धिक, तथा आध्यात्मिक उन्नति की उच्च श्रेणी को प्राप्त करके राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय पारिवारिक जीवन का महत्व समझ सकेगे और प्रेम, मैत्री तथा सहनशीलता से सब धर्मों के प्रति उदार बन कर भारत एव विश्व मे शान्ति बनाये रखने मे भाई की तरह सहयोगी बन सकेंगे।

बम्बई मे १६५४ मे जब पहले सर्व-धर्म-सम्मेलन का आयोजन किया गया था, उसमे विभिन्न १८ धर्म-गुरुओ ने मिलकर वे पाच सिद्धान्त स्थित किये थे जो विश्व-धर्म

सम्मेलन की आधार भूमि बन सकते थे। वे यह थे :—

१. आध्यात्मिक वृत्ति, २. सहअस्तित्व, ३. सत्य, ४. अहिंसा, ५. प्रेम

इन्ही के आधार पर कुछ धर्मों का एक सगठन बन सका और उसी को दिल्ली के विराट् आयोजन की वह पृष्ठभूमि कहना चाहिए, जिसको २६, २७, २८ नवम्बर १९५५ को उज्जैन के सुप्रसिद्ध महाकाल मन्दिर के मैदान मे और अधिक सुदृढ किया गया, उसके लिए विशेष रूप से अशोक मण्डप का निर्माण किया गया था। मध्य प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री मंगलदास पकवासा के हाथो उसका उद्घाटन किया गया था और राजस्थान के अर्थ-मन्त्री तथा अजमेर राज्य के तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय उसके अध्यक्ष थे। दूसरे और तीसरे दिन क्रमश ससद् सदस्य सेठ अचल सिंह जी और स्वामी प्रेमानन्द जी सभापति हुए।

सम्मेलन मे भाग लेने के लिए पोलैंड से चार धर्म गुरुओ का एक प्रतिनिधि मण्डल प्रो० निमित्स विक्टर के नेतृत्व मे उज्जैन आया था। जापानी बौद्ध भिक्षु श्री टेनजो बटनबे, भोपाल राज्य-विधान सभा के अध्यक्ष श्री सुल्तान मोहम्मद, मध्य भारत के राजस्व एवं स्वायत्त शासन मन्त्री श्री सौभाग्यमल जी जैन, स्वामी प्रेमानन्द जी, विनोबा भावे के-कनिष्ठ भ्राता श्री शिवा जी भावे, वृन्दावन के श्री वनमहाराज, हरिद्वार के श्री अखडा-नन्द जी और श्री शुकदेवानन्द जी, ससद् सदस्य श्री बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन', थियोसो, फिकल सोसाइटी के श्री सत्य नारायण चौधरी, रामजस कालेज दिल्ली के प्राध्यापक श्री इन्द्र चन्द्र शास्त्री, जमियत उल उलमाये हिन्द के मध्य-भारतीय अध्यक्ष मौलाना सिद्दकी, अमृतसर के ज्ञानी अमरसिह जी चाकर आदि सहस्रो प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इस सम्मेलन में ही दिल्ली मे विश्व धर्म सम्मेलन करने का भी निश्चय किया गया और निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए गए—

१ समस्त विश्व की एक धार्मिक सस्था बनाई जाय, जिससे ससारकी समस्त धार्मिक सस्थाए सम्बन्धित हो सकें।

२ धर्म के नाम पर पैदा हुआ साम्प्रदायिक द्वेष मिटा कर समभाव और सहिष्णु-भाव उत्पन्न किया जाए।

३ समस्त धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए सुविधाये जुटाई जाये।

४ इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया जाये।

इन प्रस्तावो से स्पष्ट है कि नई दिल्ली में विश्व-धर्म परिषद् और अहिंसा शोधपीठ की स्थापना करने का जो निश्चय किया गया है उसकी भावना और कल्पना उज्जैन मे भी मुनिजी महाराज के सम्मुख बिल्कुल स्पष्ट थी। वहाँ उन्होने सम्मेलन से पूर्व एक प्रेस-कान्फरेन्स मे विश्व धर्म सम्मेलन और विश्वधर्म विद्यालय की स्थापना का विचार सवाद-दाताओ के सम्मुख प्रस्तुत किया था। उनके उस विचार के अनुसार ही नयी दिल्ली के सम्मेलन मे उपयुक्त निर्णय किए गए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उज्जैन सम्मेलन के लिए २९ सदस्यो की जो समिति बनाई गई थी उसमे सभी धर्मों के प्रतिनिधि लिए गये थे और उससे मुनि जी के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का स्पष्ट आभास मिलता था। सम्मेलन के विशाल पडाल का नाम सम्राट् अशोक के नाम पर रखा गया था और उसमे देशभक्त सेठ

सोहन लाल जी दूगड के हाथो से महात्मा गाधी की मूर्ति स्थापित करवाई गई थी। ये दोनो घटनाए इस बात की सूचक थी कि सम्मेलन का केन्द्र-बिन्दु अहिंसा था जिसको कि सब धर्मों का निचोड कहा जा सकता है। सम्राट् अशोक को युवराज अवस्था मे उनके पिता महाराज बिन्दुसार ने उज्जैन मे राज्यपाल नियुक्त करके भेजा था और वहाँ ही रहते हुए उनको अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला था। उज्जयिनी की यह ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि सम्मेलन के कार्य के सर्वथा अनुकूल थी।

इसी क्रम के अन्तगत फरवरी १९५६ मे भीलवाडा मे मध्यभारत राजस्थान प्रान्तीय सर्व धर्म सम्मेलन का आयोजन बडी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ, इस सम्मेलन के प्रभाव से वहाँ उपस्थित चालीस हजार नर-नारियो ने मर्व धर्म समभाव रखने की प्रतिज्ञा ली।

इस प्रकार बम्बई, उज्जैन और भीलवाडा मे दिल्ली के महासम्मेलन के लिए सुदृढ पृष्ठ-भूमि तैयार की गई और सम्मेलन के मूल-प्रेरक मुनि सुशील कुमार जी महाराज ने दिल्ली पधार कर उसके लिए कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

दिल्ली मे सम्मेलन के सम्बन्ध मे की गई तैयारियो की चर्चा करने से पहले सम्मेलन के उद्दश्या पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है और उसके लिए मुनि जी महाराज के उज्जैन के सम्मेलन मे दिए गए भाषण का उल्लेख करना आवश्यक है। इस भाषण मे मुनि जी ने धर्म के सम्बन्ध मे जो विचार प्रकट किए थे वे भी अत्यन्त महत्वपूण है। सर्व-धर्म सम्मेलन का उद्देश्य आपन सार्वभौम धर्म की खोज करना बताया था। क्योकि उसके बिना मानव का जीवन अमृतमय नही बन सकता।

धर्म चिन्तन से ही पूव-पश्चिम को एकता की भूमिका के तैयार होने की सम्भावना को प्रगट करते हुए आपने कहा था कि आज जब कि समूचा विश्व एक स्वर मे विश्व-शाति के लिए विश्व-राज्य का निर्माण करने जा रहा है, उस समय तो विश्व-धम की चर्चा करना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। विश्व-धम के बिना विश्व-राज्य कोरा स्वप्न रह जायेगा। आर्थिक और राजनीतिक सुविधाओ को लेकर अथवा युद्ध-विभीत बनकर विश्व-राज्य का पाया सुदृढ नही हो सकता। विश्व-राज्य का भवन विश्व-धम के सहारे ही खडा हो सकता है। धम-सम्मेलन का आशय कोई उत्सव करना अथवा प्रदशन करना मात्र नही है, अपितु सार्वभौम राज्य के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करना है जिसमे मानव-जाति मे एकीकरण की भावना का उदय हो सके।

धम के स्वरूप के सम्बन्ध मे तब आपने ठीक ही कहा था कि तत्त्व-रूप मे समूचे विश्व का धर्म एक ही है, अनेक नही। किन्तु भाषा, भाव आदि अन्यान्य विभिन्नताओ के कारण उसकी अभिव्यक्तियाँ विविध है, दृष्टियाँ पृथक्-पृथक् हैं। सभी दृष्टियो के समीकरण से एक ही विराट् धर्म के इस भूतल पर दर्शन होते हैं। मानव एक है किन्तु विचार, व्यवहार और आवश्यकताओ के नाते अनेक है। मगोलियन, काकेशियन, आयन, अफ्रीकन तथा योरू-पीयन ये सब रूपान्तर मानव मे प्रादेशिक सास्कृतिक भिन्नता के ही कारण है। तत्त्व-भेद किंचित् भी नही है, क्योकि समूची मानव-जाति मे लक्ष-लक्ष अन्तर होने पर भी ऐसा अखड-तत्त्व अवश्य है जो एकता, समता तथा बधुता की वशी बजा रहा है जिसके स्वर मे प्रतिध्वनित हो रहा है कि समूची मानव-जाति एक है। वसुधा एक अविभक्त कुटुम्ब है, सब एक ही

परिवार के अभिन्न सदस्य है, एक ही पूर्वज की सन्तान हैं, हमारी धमनियो मे एक ही रक्त गति कर रहा है, वह तत्व धर्म है, जो हृदय-ग्रन्थियो का भेदन कर संशय, अविश्वास तथा भेद-दृष्टि के जगत् से पार ले जाकर आध्यात्मिक अभिन्नता के दर्शन कराता है। धर्म-साधन अभेद-मूलक है। भौतिक विकास भेद-मूलक विश्लेषण पर तथा धर्म-सश्लेषण पर बल देता है, यही धर्म की उपयोगिता है।

मानव की धर्म के सम्बन्ध मे एक शाश्वत कमजोरी का भी विवेचन मुनि जी ने बहुत सुन्दर शब्दो मे किया था। अपनी कमजोरी को धर्म पर लादकर उसको गूढ रहस्य बना देना मनुष्य का कुछ स्वभाव-सा बन गया है। उसकी चर्चा करते हुए आपने कहा था कि मानव ने आग्रहवश धर्म पर अर्थों के अम्बार और परिभाषाओ के ढेर लगा दिए है। अब भी धम की ७०० परिभाषाएँ अपना-अपना अस्तित्व रखती हैं। प्रत्येक धर्म परस्पर मे एक-दूसरे को अपूर्ण और स्वय को पूर्ण मानने का हठ पकडे हुए है। यही कारण है, स्वकल्पित अर्थ के आग्रह के कारण प्रत्येक धर्म ने जगत् के सभी धर्मों से अवाछनीय व्यवहार किया है और कही-कही पर वह भावना इतनी उद्दाम हो गई है कि जगत् के सभी धर्मों का नाश करके सर्वधर्म की सत्यता प्रमाणित करने के लिए विध्वस लीला के अकाड ताडव घटित हो गए है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि जगत् मे अनेक धर्म है, उनका अपना-अपना सापेक्ष दृष्टि से महत्त्व है। उपयोगिता और आवश्यकता मे अनक धर्म है। सभी धर्म दृष्टि-बिन्दु हैं। अहिसा के साधनो से सत्य की शोध के सभी हिमायती हैं, किन्तु उनकी योग्यता, सामर्थ्य, दृष्टिकोण पृथक् है, सभी धर्मो का नाश करके मानव-जाति को एक बाडे मे बन्द करना कभी भी हितकारक नही हो सकता है, सम्भव है कि अपकर्ष का ही कारण हो। न ही किसी व्यक्ति को किसी तत्त्व का नाश करने का अधिकार है। पिछली शताब्दियो मे राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जरथुस्त, कन्फ्यूशियस, लाओत्से, ईसा, मुहम्मद जैस अवतार, तीर्थकर, तथागत तथा पैगम्बरो का मानव दर्शन कर चुका है। ये महामानव थे और ये मानवता के ज्वलत प्रहरी और आत्मा के दिव्य सदेश-वाहक थे। इन सबको धम-प्रवर्तक कहा जाता है। प्रवृत्तियो को सबके प्रतिकूल और अभिलाषित शाश्वत आत्म अनुकूलताओ को समस्त के लिए हितावह माना था। "आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्" यही इनका सार था। अत धर्म जैसे व्यापक तत्व को हम किसी सीमा अथवा श्रेय-प्रेय के पचडे मे नही उलझा सकते। धर्म का अर्थ मूल मे स्वभाव है, समाज मे सदाचार है, सस्कृति मे आदर्श है और सभ्यता मे सद्व्यवहार है। कला और साहित्य के क्षेत्र मे श्रेय और अभ्युदय है। सन्तो मे सर्वोदय तथा मानस-शास्त्रियो मे स्वस्थता है। धम के मूल अनेक है, अर्थ अगणित है, तात्पर्य एक ही है कि चैतन्य का धम चैतन्य है जिस हम आत्म-स्वभाव कह सकते है। आत्मा ही धर्म का स्रोत है और आत्म-स्वभाव के विकास को ही हम परिपूर्ण धर्म मान सकते है।

एक धम अनेक मे कैसे परिवर्तित हो गया इसका विवेचन करते हुए मुनि जी ने कहा था कि —

"भारत की सास्कृतिक चेतना ने जैन-धर्म, वैदिक-धर्म, और बौद्ध-धम को स्वरूप दिया है। ईरान और पैलस्टाइन ने पारसी, यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मो को जन्म देने का गौरव प्राप्त किया है, तथा चीन और जापान ने शितो, ताओ तथा कन्फूशियस मत को

आविर्भूत किया है। इन्ही धर्मों का सम्प्रदायो के रूप मे वर्गीकरण हो गया। आज भारत मे अनेक सम्प्रदाय है जैसे कि —

वैदिक-धर्म— वैष्णव, शैव, भागवत्, सौरमत, सतपथ, आर्यसमाज आदि

जैन-धर्म—दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापथी।

बौद्ध-धर्म—हीनयान, महायान, सौतान्त्रिक, वैभाषिक, माध्यमिक, योगाचार। इतर सम्प्रदाय अनेक है।

पारसी, यहूदी, ईसाई, रोमन-कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, इस्लामी, बोहरा, कादियानी, बहावी, सूफी, कन्फ्यूशियस, ताओ, शिन्तो आदि धर्मों का भी यहां अविशेष है। यही क्या महावीर की वाणी सुनते है तो वे ३६३ मतो का उल्लेख करते हैं, आरम्भवादी, परिणाम-वादी, नियतिवादी आदि अनेक आजीवक गोशालिक प्रबुद्ध कात्यायन, पूर्ण कश्यप आदि धर्म-स्थानो का विवेचन प्राप्त होता है। फाहियान ने स्वय अपने वर्णन मे बौद्ध-धर्म के सिवाय ६३ अन्य सम्प्रदायो का वर्णन किया है। इन सबका उद्देश्य-भाव विमुक्ति ही रहा है, फिर चाहे उनका दृष्टिकोण कितना ही आशिक क्यो न हो।

ससार के समस्त धर्मो का जन्म एशिया मे हुआ है, पूर्वी एशियायी धर्मों का प्रति-निधि भारत है और पश्चिमी सभी धर्मों के प्रतिनिधि ईरान और पैलस्टाइन है। यद्यपि सभी धर्मों का आदर्श आध्यात्मिक उत्कष की प्राप्ति ही रहा है तो भी प्रादेशिक भिन्नता के कारण पूर्वी और पश्चिमी धर्मों के कार्य पर गहरा और विभिन्न रूप मे प्रभाव पडा है। पश्चिम मे धम को एक सामाजिक सस्कार, जातीय एकता का प्रशस्त पथ, राष्ट्रीय सुदृढता की दीवार तथा लोक-सुख-परायणता का माध्यम माना जाता है। पूर्व के तमाम देशो मे धम को आन्तरिक अनुभूति, अत्यन्त दुख विनाश का हेतु, सयम, तप, समाधि, निदिध्यासन सर्वभूतानुकपा का प्रदाता और आध्यात्मिक स्वस्थता का कारण माना गया है। पूर्व मे सत्व भूत के प्रति मित्रता, गुणियो के प्रति प्रमोद, दुखियो की मदद तथा विपरीत वृत्ति वालो के प्रति माध्यस्थ भाव रखना ही धर्म का सच्चा लक्षण बताया गया है।

आज एक ओर तो धर्म, वहम, अन्ध-श्रद्धा, कट्टरता, आग्रह, कल्पना, थोथी धारणा प्रपच तथा आडबरो का अजायबघर बन गया है और दूसरी ओर गगनगामी, उर्ध्व-मुखी, विराट् चिन्तको के आध्यात्मिक अनुभवो का भण्डार बना हुआ है जिन्हे दैवी गुण कहा जाता है, जिन पर मानवता सास ले रही है, मनुष्य भूमा बन रहा है, सस्कृति विश्व-व्यापक हो रही है। धर्म की अवस्था ऐसी हो गई है कि सामान्य प्रजा तो धर्म को नितान्त सत्य, वैज्ञानिक नितान्त असत्य तथा अधिकारी लोक-मानस को दास बनाये रखने मे उपयोगी धर्म को मानते है।

धर्म पर अधम की शैवाल जम गई है। सत्य पर सत्याभास की प्रतिष्ठा हो चुकी है क्योकि मनुष्य मे सशोधक-वृत्ति का अभाव होता जा रहा है। धार्मिको का विश्वास है कि धम मे विकास अथवा परिष्कार का अवकाश नही है। ऐसे लोग भूल जाते है कि प्रत्येक धर्म अपनी आस-पास की सास्कृतिक भूमिकाओ से अविश्लेष्य रूप से घिरा रहता है। इसलिए जो धम ग्रहण और त्याग की वृत्ति को भूल कर अकडते रहते है, वे असमय मे ही नष्ट हो जाते है। इसी प्रकार सैकडो धर्म, सहस्र सम्प्रदाय, अनेक महाजातियां तथा

अगणित सभ्यताएँ महावर्त मे विलीन हो चुकी हैं, जिन्होंने परिष्कार को स्थान ही दिया था। प्रत्येक क्षण अतीत की बुराइयों को निकालते रहो, नीति तथा तत्त्वानुभव की नई पद्धतियों का निर्माण करते रहो, तभी धर्म मानव के लिए अमरता का मार्ग बना रह सकता है।

धर्म वह है जो व्यक्ति की अकुण्ठित शक्ति जगा दे, सकल्प के बल को प्रोत्साहन दे, व्यक्तित्व के विकास मे सहायक हो, समष्टि का आत्म-बल आत्मसात् करने की प्रेरणा दे, व्यष्टि को विश्व मे विलय करने की सामर्थ्य दे, अप्रमाद, विवेक तथा अहिंसा की भावना को जागृति दे, वह धर्म हो सकता है। उसे ही हम जीवित धर्म कह सकते हैं। दयाहीन मदद की बात को बाह्य, लौकिक कहने वाले धर्म को हम धर्म कभी भी नही कह सकते। धर्म वह नहीं है, जो सकीर्णताओ से सकुल रूढियो से निर्जीव, अन्ध-विश्वासो से निश्चेतन, और बाह्य आडम्बरो से भारभूत हो गया हो। वह धर्म नही कहा जा सकता, वह तो धर्म पर अभिशाप है।

विश्व के सभी धर्म उसी महापट के एकमात्र तन्तु है जिनसे समन्वित होकर विश्व-धर्म बना है। सभी धर्म उसी वृक्ष की शाखाये हैं जिनसे विश्व-धर्म-रूपी विश्ववृक्ष का जन्म हुआ है। सभी के मूल मे वह प्रेम रस, अखण्ड आनन्द, तथा अलभ्य अमृत बह रहा है जो निरन्तर हमारे ज्ञान, श्रद्धा, चरित्र की अपूर्णता को भर रहा है। जैन धर्म के नन्दी सूत्र मे भगवान् महावीर ने एक स्थान पर कहा है कि यदि मनुष्य की दृष्टि शुद्ध और सम्यक् बन जाय तो सभी धर्मों और शास्त्रो की उपयोगिता प्रत्यक्ष हो सकती है। माना कि महासमन्व-वादी शब्दानुलक्षी नही अपितु तत्त्वानुलक्षी होता है। वह वैविध्य मे से सवाद, अनेकत्व मे से एकत्व तथा भेद मे अभेद की प्रतीति करता है। धर्म की सच्ची निष्ठा अभय और अहिंसा है। बुद्धि और हृदय के समन्वय मे सतुलन और विवेक की सुसगति मे ही निहित है। निष्ठा और कृति मे तदाकारता ला देना धर्मों की अपूर्व सफलता है। ज्ञान और प्रेम, स्वतन्त्रता और समभाव, धर्म के वरदान है। धर्म ने ही मानव को भौतिक आसक्ति से सावधान किया है। विज्ञान शास्त्री मनुष्य को विज्ञान के पिंजरे मे पशु की तरह बाधना चाहते हैं, यन्त्रवत् बना देना चाहते हैं। यह जीवन का अपमान है। धर्म मानव को स्वय मे ही अपना शस्त्र बनाकर चलाना चाहता है। अत धर्म की मूल आत्मा एक है। वैदिको का ऋषभदेव, जैनो का आदिनाथ और ईसा, मुहम्मद का बाबा कादिम एक ही है। हम उसी की सतान है। इसमे कोई भेद नही, भेद मनुष्य मे नही, दृष्टि मे होता है। धर्म श्रद्धालुओ, धर्म को नास्तिकता, जडवाद और भौतिकता से पराभूत न होने दो, धर्म की रक्षा करो, धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा! उठो आगे बढो, दुर्बलो की रक्षा करो, निर्बलो पर अत्याचार मत होने दो, अज्ञान हृदयो मे ज्ञान की ज्योति जला दो, समूचे विश्व को एक कर दो, समूची आत्मा मे एकता का अनुभव करो, अपनी अनन्त शक्ति से विश्व-कल्याण मे जुट जाओ, यही धर्म के अतर्नाद की ध्वनि ही महासमन्वय और विश्व एकता का एकमात्र माध्यम है!

"सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया·
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत्।"

यह है परम पवित्र ऊँची भावना, कल्पना और आकाक्षा, जो सर्वधर्म सम्मेलन अथवा विश्व धर्म सम्मेलन के आयोजन की मूलभूत आधारशिला है। राजनीतिक नेता भी

सह-अस्तित्व अथवा पचशील के आदर्शों से अनुप्राणित होकर इसी लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु अध्यात्मवादी नेतृत्व को उनके प्रयत्नो मे एक अपूर्णता अनुभव होती है और वह उनके प्रयत्नो को पूर्ण बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। सक्षेप मे दिल्ली मे आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन का यही लक्ष्य अथवा उद्देश्य है। भौतिकवाद से ऊपर उठकर आध्यात्मिकवाद के आधार पर मानव-हृदयो मे आत्मिक एकता की अनुभूति जगाकर विश्व शाति अथवा विश्व एकता के स्वप्न को साकार बनाना सम्मेलन का मुख्य ध्येय है। विश्व धर्म परिषद् और अहिसा शोधपीठ की स्थापना करने का निश्चय इसी लक्ष्य, उद्देश्य अथवा ध्येय की पूर्ति के लिए किया गया है।"

दिल्ली मे धर्म सम्मेलन

विश्व धर्म सम्मेलन का सब से विराट् रूप दिल्ली मे सन् १९५७ मे प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन के रूप मे देखने को मिला। यह सम्मेलन १७, १८ नवम्बर को दिल्ली के लालकिले मे हुआ, जिसका खुला अधिवेशन रामलीला मैदान मे तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता मे हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्रप्रसाद ने किया। इस सम्मेलन मे प्रधानमत्री प० श्री जवाहरलाल नेहरू व मौलाना अबुल कलाम आजाद ने भाग लिया।

इस सम्मेलन मे २७ देशो के २६० प्रतिनिधियो ने भाग लेकर इस प्रयास को सफल बनाया। इसमे पारित प्रस्तावो को लेकर तीन वर्षों के बाद पुन द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन के आयोजन का निर्णय करते हुये मुनिश्री सुशीलकुमार जी ने उसके सयोजन का कार्यभार सम्भाला।

सम्मेलन के लक्ष्यो को व्यावहारिकता प्रदान करने के लिए १८ नवम्बर १९५७ ई० को दिल्ली के ऐतिहासिक लालकिले के अधिवेशन मे सर्व सम्मति से दो प्रस्ताव पारित हुए।

विश्व धर्म संगम

प्रथम प्रस्ताव के अनुसार धर्म के आधार पर विश्व बन्धुत्व की भावना के उद्रेक, विकास एव प्रचार के लिये विश्व धर्म सगम नामक एक सस्था की स्थापना की गई। दूसरे प्रस्ताव के अनुसार सभी धर्मों मे परस्पर धर्म के नाम पर होने वाले मतभेदो तथा अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझने की भावनाओ का त्याग करने तथा परस्पर प्रेम, सौहार्द एव सहयोग के लिए प्रयास करने पर बल दिया गया। साथ ही विभिन्न व्यक्तियो, जातियो एव राष्ट्रो मे प्रेम और विश्व-बन्धुत्व की भावना की स्थापना एव विकास के लिए समुचित साधनो, उपायो आदि की जानकारी के उद्देश्य से अहिसा, सत्य एव प्रेम की शक्तियो एव क्षमताओ के अनुसन्धान और युग-युग के आध्यात्मिक आदोलनो एव विचारो के सूक्ष्म अध्ययन के लिये एक "अहिसा शोधपीठ" (अहिसा रिसर्च इन्स्टीट्युट) की स्थापना की गई।

प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन मे रूस के प्रतिनिधि मण्डल के मुफ्ती जियाउद्दीन बाबाखनोव, जापान के प्रतिनिधि श्री इमाईसान, पाकिस्तान के सैयद मुहम्मद काबिल, हगरी के रैवरेण्ड केरिज वर्की, कम्बोडिया के धर्मगुरु भिक्षु दोयफान फलानोनो व कोटगटच्यू प्यासला,

अमरीका के श्री रिचर्ड ग्रेग तथा होरेस अलैग्जण्डर, बहाई प्रतिनिधि श्रीमती शीरेन बोमान, इंग्लैण्ड के श्री डब्ल्यु ए० सिबली, फ्रांस के श्री बुडलैण्ड कहालर, जर्मनी के डा० फ्रेडरिक हाईज, आस्ट्रेलिया के श्री ऐरिक बुजल, स्विटजरलैण्ड की श्रीमती हिताल, डेन्मार्क के श्री औलुफ इगोरीड, हालैण्ड के श्री जे० बिकनाबोर्ग, नार्वे की श्रीमती एच० बर्ग, स्पेन की गास्थ लूथर, इजराईल के डा० ओ० रोबिन्सन, ईरान के श्री ए० ए० हिकमत, अरब के प्रोफेसर मुहम्मद अलमामून, पूर्वी अफ्रीका के श्री मोहनलाल कर्मचद, दक्षिणी अफ्रीका की श्रीमती पिगाबेल, नैपाल के श्री आशाराम शाक्य, तिब्बत के श्री सियासन डी माम, बर्मा के श्री उलान हुला, आस्ट्रेलिया की श्रीमती वर्था टौखर, दक्षिणी कोरिया के श्री प्रोफेसर हीशिमी और भारत के श्री भूपराज जैन, स्वामी हरिहरानन्द जी म०, श्री सौभाग्यमल जैन, सेठ गोविन्द दास, ससद-सदस्य, श्री काकासाहब कालेलकर, स्वामी शान्तानन्द जी, सेठ अचल-सिंह जी, ससद सदस्य, श्री जैनेन्द्रकुमार, स्वामी नरेन्द्र जी, हाफिज शेख, रफीउद्दीन खादिम, योगीराज हसजी महाराज, श्री डी० रगाजी, सन्त तुकडो जी, श्री एनायुल औग, स्वामी स्वयमेन्द्र आश्रम, श्री दोलतराम गुप्ता, महन्त रामकिशोर जी, स्वामी गगेश्वरानन्द जी, श्री बद्रीनारायण शुक्ल, सूफी नजीर अहमद, प० हीरालाल शास्त्री, महन्त प्रेमदास जी आदि धर्म-प्रतिनिधियो ने भाग लिया।

कलकत्ता–द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन

मुनि श्री सुशील कुमार जी ने दिल्ली से बग प्रदेश की ओर पदयात्रा करते हुए कलकत्ता मे जाकर धर्म सम्मेलन का प्रचार शुरू किया। १९ जुलाई १९५९ को कलकता के प्रमुख नागरिको एव धार्मिक प्रतिनिधियो की एक सभा ने मुनि श्री जी के प्रेरणा से, सर्व-सम्मति से यह निश्चित किया कि जनवरी १९६० मे कलकत्ता द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया जाय। इसके लिए एक कार्यकारिणी का गठन हुआ, जिसमे सन्त श्री कृपाल सिंह जी के अलावा दीनदुखी लालबाबा, डा० कालिदास नाग, श्री जसवन्त सिंह लोढा, श्री त्रयम्बक लाल दामाजी, श्री भालचन्द शर्मा के अतिरिक्त ११ उपाध्याक्षो एव ३० सदस्यो की समिति का निर्वाचन हुआ। लोगो ने यह अनुभव किया कि राजनीतिक समझौते से युद्ध का अन्त सम्भव नही है, अनुचित एव अस्वस्थ कूटनीतियो से समृद्धि नही आ सकती है। अन्ध मूढवादिता, वर्ग-सघर्ष, जाति-विद्वेष पशु एव अन्य जीवो के साथ निर्दय व्यवहारो से कोई लाभ नही हो सकता। अणुबमो, उदजन बमो, राकेट आदि से मानव मस्तिष्क मे शान्ति, आनन्द, कल्याण, प्रेम और अहिंसा के श्रोत प्रबाहित नही किये जा सकते। अपितु भय और आतक का वातावरण अशान्ति ही उत्पन्न कर सकता है।

२ फरवरी १९६० को अपराह्न मे वैदिक, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, सिख, पारसी बहाई आदि धर्मों के मगलाचरण पाठ से सम्मेलन आरम्भ हुआ। इसके पश्चात् विभिन्न देशो के प्रतिनिधियो ने पाठ किया। इस सम्मेलन का उद्घाटन चैतन्य मठ मायापुर के आचार्य श्री त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद् भक्ति विलास तीर्थ महाराज ने किया। इस सम्मेलन मे मुनि श्री सुशील कुमार जी ने अपने प्रेरक भाषण मे सभ्यता पर धर्म का प्रभाव, धर्म की वास्तविकता तथा सम्प्रदायवाद, मानव को क्या करना चाहिए ?—इन बातो पर प्रकाश डाला। ३ फरवरी

१९६० को ससद्-सदस्य सेठ गोविन्ददास जी की अध्यक्षता मे सभा हुई और अहिंसा का दिशा दर्शन करते हुए मुनि श्री सुशील कुमार जी ने अहिंसा की शिक्षा-दिशा और उसके कार्य का स्वरूप बताया। इस सम्मेलन मे अहिंसा के प्रचार के लिये द्विसूत्रीय योजना बनाई गई, जिसमे 'अहिंसा शोधपीठ' की स्थापना, और 'अहिंसा विज्ञान कोष' के प्रकाशन का प्रस्ताव पास हुआ। इस सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप मे सन्त श्री कृपाल सिह जी महाराज ने धर्म के स्वरूप का विवेचन किया और बताया कि—धर्म के अध्ययन मे दोष कहाँ है, हमे धर्म मे जीवन की खोज करनी चाहिए, और यह एक खोज का विषय है।

इस सम्मेलन की तीसरी सभा ३ फरवरी को डा० रमा चौधरी की अध्यक्षता मे महिला सम्मेलन के रूप मे हुई। इस सभा मे 'नारी का समाज मे योगदान और उसका सेवा-भाव' को बताया गया। उन्होंने कहा कि 'नारी के योगदान से विश्व मे शान्ति की सम्भावनायें अधिक हो सकती हैं और नैतिक मूल्य भी बढ सकते है।'

शाकाहार का महत्त्व

४ फरवरी १९६० को सन्त श्री कृपालसिंह जी की अध्यक्षता मे 'शाकाहार-सम्मेलन हुआ जिसमे मुनिश्री जयन्तीलाल ने शाकाहार के महत्त्व को बताया। सम्मेलन के प्रधान वक्ता श्री सिद्वराज जी ढड्ढा ने 'अहिंसा और जीवन' विषय पर अपने विचार प्रकट किये। अरविन्द आश्रम पाण्डेचेरी के प्रतिनिधि श्री केशवदेव जी पोद्दार ने भी शाकाहार का महत्त्व बताया। सन्त श्री कृपालसिह जी म० ने आहार की सात्विकता, महिमा, संन्यासी महेन्द्र बाबा ने धर्म और आहार के विषय मे बताया। इसी समय एक शाकाहार-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ—"इस सम्मेलन का दृढ अभिमत है कि—अहिंसक समाज व्यवस्था की स्थापना के लिये शाकाहार उसकी पूर्व स्थिति है, जिसे मानव को निश्चित रूप से पूरा करना होगा, इससे पहले कि वह शांति-प्रभात की अभिलाषा करे। इसलिये यह सम्मेलन सभी लोगो, राष्ट्रों तथा विश्व के सभी धर्मों से शाकाहार को अपने जीवन-व्यवहार मे स्वीकार करने तथा मानव भोजन एव जीवन-यापन के लिये शाकाहार को प्रोत्साहन देने के लिये अपील करने का निश्चय करता है। साथ ही भोजन, मनबहलाव या शौक और उद्योग के लिये होने वाली हिंसाओ को अधिकाधिक कम करने की अपील करता है।"

इस सभा मे ईरान के श्री अबुलफजल हैंजगी, सयुक्त अरब गणराज्य के अलअजहर विश्वविद्यालय के श्री अब्दुल मोनियम एम० खताब, बर्मा के श्री चुन्नीलाल दामोदरदास भावसार, श्री सच्चिदानन्द भक्तिप्रभा, सयुक्त मन्त्री गौडीय वैष्णव-समाज, वियतनाम के भिक्षु थिच्च मिन्ह चाऊ, थाईलैण्ड के भिक्षु विवेकानन्द ने भाग लिया। मुनिश्री सुशीलकुमार जी महाराज ने शाकाहार के वातावरण, अनुभूति, मांसाहार के कारणो के सबध मे बताते हुये कहा कि—शाकाहार मनुष्य की सात्विकता के लिये अनिवार्य है। योगाचार्य श्रीमद् त्रिपुरा चरण ने आहार और स्वभाव के बारे मे बताया।

५ फरवरी १९६० को धर्म-परिसवाद हुआ—जिसके अध्यक्ष ईरान के श्री अबुलफजल हैंजगी और प्रधान अतिथि महामण्डलेश्वर स्वामी श्री सर्वानन्द जी महाराज थे। इस परि-सवाद मे योगोदा आश्रम के स्वामी क्रियानन्द गिरि और मलाया के स्वामी सत्यानन्द जी ने

धार्मिक उदारता का विवेचन किया । विश्व धर्म सम्मेलन के प्रेरक मुनिश्री सुशीलकुमार जी ने बताया कि धर्म एक सर्वांग जीवन-दर्शन है ।

६ फरवरी १९६० को होने वाले अहिंसा-सम्मेलन के अध्यक्ष डा० राधाबिनोद पाल थे । उन्होने शक्ति-संतुलन, नैतिक प्रश्न, विश्व-समुदाय, शस्त्रीकरण, युद्ध, वैचारिक क्रान्ति को लेकर अहिंसा और समाज के सम्बन्धो का विश्लेषण किया ।

ईरान के बहाई प्रतिनिधि श्री खाबेरी ने अहिंसा और विज्ञान के सम्बन्ध मे बताया । इस सम्मेलन मे स्वामी आनन्द, जस्टिस श्री रमाप्रसाद मुखर्जी, आस्ट्रेलिया के श्री एडवर्ड ऐल्पप, श्रीलका के श्री डी० एल० डी० समरसेकर ने भी अपने विचार प्रकट किये ।

७ फरवरी १९६० को कलकत्ता के रणजीत स्टेडियम मे विश्व धर्म सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता कलकत्ता उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री रमाप्रसाद मुखर्जी ने की । उन्होने मनुष्य की भौतिक प्यास, विभक्त धर्म और उसका कारण बताते हुए धर्म के समन्वय मन्त्र, जीवन-निर्माण, धर्म और विज्ञान की एकता, यत्रवाद, सस्कृति के महत्त्व और मानव-परिवार पक्षो पर प्रकाश डाला ।

८ फरवरी १९६० को खुले अधिवेशन की दूसरी बैठक हुई, जिसका आरम्भ पश्चिमी बगाल के स्वायत्त शासन-मन्त्री श्री ईश्वरदास जालान ने किया । विश्व-धर्म सम्मेलन के अध्यक्ष सन्त श्री कृपाल सिह् जी महाराज, कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा० मोहम्मद जुबेर सिद्दकी, जापान के श्री व्योगो यूरियामा, बर्मा के श्री चुन्नी लाल भावसार, सयुक्त अरब गणराज्य के श्री अबुल मोनियम एम० खताब, मलाया के श्री लोचिन्वान ने प्रतिनिधि के रूप मे भाग लिया ।

दिल्ली—तृतीय विश्व-धर्म सम्मेलन

तृतीय विश्व-धर्म सम्मेलन २६, २७ और २८ फरवरी १९६५ को दिल्ली के रामलीला मैदान मे हुआ । २६ फरवरी को प्रात काल विषय-निर्वाचन समिति की बैठक हुई । सध्या को सम्मेलन का उद्घाटन श्री मोरारजी भाई देसाई ने किया । जनरल चेयरमैन श्री साहू शान्ति प्रसाद जैन तथा चेयरमैन श्री अमीरचन्द गुप्ता ने स्वागत भाषण दिये । सम्मेलन के महामत्री डा० बूलचन्दजी ने विश्व-धर्म सम्मेलन का विवरण और प्राप्त सदेशो का वाचन किया । इसी अवसर पर विश्व-धर्म सम्मेलन के प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज, अध्यक्ष सन्त श्री कृपाल सिंह् जी महाराज, सह-अध्यक्ष बैरम वान ब्लोम्बर्ग और प्रधानमत्री स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री ने अपने भाषण किये । सम्मेलन के मन्त्री डा० रूपलाल बत्रा ने प्रतिनिधियो का परिचय दिया ।

इस सभा मे सन्त तुकडो जी महाराज, सद्गुरु जगजीत सिह जी महाराज, मुफ्ती अतिकुर्रहमान, स्वामी चिदानन्द जी महाराज चिदाकाशी, स्वामी श्री गणेशानन्द जी महाराज भते कुशक बकुला, महामान्य आरमेनियन पोप प्रमुख वक्ताओ मे थे । तत्कालीन गृहमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने अध्यक्षीय भाषण दिया ।

२६ फरवरी को प्रात.काल "धर्म अभियान सम्मेलन" हुआ जिसकी अध्यक्षता सन्त श्री कृपाल सिह् जी महाराज ने की । इसके सयोजक आचार्य प्रभाकर मिश्र थे । इस सम्मेलन

के विचारणीय विषय धर्म और विज्ञान, धर्म और शिक्षा, युवक समस्याओ का धर्म द्वारा समाधान, सदाचारी जीवनचर्या थे। सायकाल "एकता सम्मेलन" महामान्य आरमेनियन पोप की अध्यक्षता और श्री बैरन फारी वान ब्लम्बर्ग के सयोजन मे हुआ। इसमे धर्म क्या है और उसकी आवश्यकता क्यो है, धार्मिक सयुक्त मच का निर्माण आदि विषयो पर विचार किया गया।

२८ फरवरी को प्रात काल "अहिसा सम्मेलन" सेठ गोविन्द दास, ससद्-सदस्य की अध्यक्षता मे हुआ। इसके सयोजक श्री जैनेन्द्र कुमार थे। अहिसा सम्मेलन मे अहिसक समाज-रचना का आधार, अणु युग मे धर्म सगठन की भूमिका के विषयो पर विचार हुआ। सायकाल विश्व-धर्म सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ, जिसकी प्रमुख वक्ता तत्कालीन भारत की स्वास्थ्य मन्त्री डा० सुशीला नैयर थी।

इस सम्मेलन मे मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने भाषण मे कहा कि "भारत विश्व-बधुत्व की भूमि है और यह देश धर्म-समन्वय का है। इस देश मे उदारवाद की भावना मिलती है और साम्प्रदायिक सकीर्णता को दूर करने का प्रयत्न किया जाता रहा है। जैन धर्म मे धर्मसहिष्णुता की भावना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह युग धर्म और विज्ञान का है जिसमे विज्ञान के प्रभाव से लोग धर्म के प्रति आस्था नही रखते।" मुनि जी ने धर्म सम्मेलन के सप्तसूत्री उद्देश्य के बारे मे बताया

(१) धर्म सम्मेलन सारे ससार को धर्म के प्रेम बन्धन मे बाँधना चाहता है।
(२) धर्म सम्मेलन धर्मों का एक विश्वविद्यालय बनाना चाहता है।
(३) धर्म सम्मेलन धर्मों का एक विश्व-कोष सम्पादित करना चाहता है।
(४) धर्म सम्मेलन सारी मानव-जाति मे धर्म के प्रति एक सार्वभौम दृष्टिकोण पैदा करने के लिए धर्म-सहिता (चार्टर) बनाना चाहता है।
(५) धर्म सम्मेलन समूचे विश्व के शैक्षणिक पाठ्यक्रम मे धर्म-शिक्षा को अनिवार्य करना चाहता है।
(६) धर्म सम्मेलन सारे मानव-जीवन को और सारे विश्व को धम के अमृत से ओत-प्रोत कर देना चाहता है।
(७) धर्म सम्मेलन विश्व के सघर्षों को अहिसा के द्वारा शान्ति और मानव जाति की पुनर्रचना मे परिवर्तित कर देना चाहता है। अहिसा शोधपीठ और उनकी अनेक प्रवृतियो को विश्व शाति के लिए सम्पूर्ण रूप से सहयोगी देखना चाहता है।

इस सम्मेलन मे अमेरिका, जापान, युगोस्लाविया, स्काटलैण्ड, फिनलैण्ड, हालैण्ड, पोलैण्ड, इटली, फास, जर्मनी के प्रतिनिधियो ने भाग लिया।

दिल्ली—चतुर्थ विश्व धर्म सम्मेलन

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन नई दिल्ली के रामलीला, मैदान मे दिनाक ४ से ८ फरवरी, १९७० तक आयोजित हुआ।

सम्मेलन का उद्घाटन प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु परमादरणीय फूजी गुरुजी द्वारा किया

गया, अध्यक्षता भारत के तत्कालीन उपप्रधानमत्री श्री मोरारजी देसाई ने की। अनेक प्रख्यात व्यक्तियो ने विश्व धर्म सम्मेलन के कार्यक्रम और महत्त्व पर प्रकाश डाला। विषय समिति की बैठकें चार अलग-अलग भागो में हुईं। विषय निम्न प्रकार थे —

१. मनुष्य के सर्वांगीण विकास मे धर्म का स्थान।

२ अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक एकता और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए सस्था की स्थापना।

३ धर्मों की अतर्राष्ट्रीय व्याख्या।

४ वर्तमान युग मे धर्मों की उपादेयता।

उपर्युक्त चारो समितियो के अध्यक्ष क्रमश प्रो० राममूर्ति (न्यूयार्क), आचार्य काकासाहब कालेलकर, श्री बैरन फ्रेरी वान ब्लस्वर्ग (यू० एस० ए०) तथा उपाध्याय श्री अमर चन्द्र जी महाराज थे।

निम्नलिखित विशिष्ट व्यक्ति भी सम्मेलन मे उपस्थित थे —

१ कर्नल पिन मुथूरव्दान्त, बैङ्कोव्द (थाइलैण्ड) २. श्री अब्दीश अफकानिशी, टोक्यो (जापान) ३ स्वामी दयानन्द वैदाचार्य, बडौदा (गुजरात) ४ श्री सौकाक मिसुन थोन लाओस ५ श्री मैथीधान डायव्येन, हालैंड ६ श्री बैंचग प्रिरीराध, सस्कृति मत्रालय, शिक्षा विभाग ७ श्री ए० हाव्यामिशी, (जापान) ८ श्री सौकान्ब सिसु थौम, (लाओस) ९ श्री काबल सिट को, डाप्न पेनमा (यू० एस० ए०) १० मेजर जनरल मोहम्मदमजहरी, (ईरान) ११ श्री कात्य लैन बैस्ली, एथैन्स, (ग्रीस) १२ श्री लौथार डैण्डल पिलम (इण्डिया) १३. वीर डा० मो० डब्ल्यु पिक नौलेटहर स्टार (प० जर्मनी)

प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज ने अपने भाषण मे विश्व धर्म सम्मेलन के कार्य और लक्ष प्राप्ति की दिशा मे आगे बढने के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। उन्होने धर्म की सच्चे अर्थों मे व्याख्या करते हुए आज के समय मे धर्म की आवश्यकता पर बल दिया।

मुनि जी का भाषण

प्रिय आत्माओ,

विश्व धर्म सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन पर मैं आगतुक महानुभावो, धर्माचार्यों, धर्म-प्रतिनिधियो का हार्दिक अभिनदन करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। अनेक प्रकार की मार्ग-बाधाओ को पार कर आप इस धार्मिक विश्व-परिवार के सदस्य के रूप मे उपस्थित हुए, इसके लिए मैं आप सबका बहुत आभारी हूँ।

विगत १५ वर्षों मे विश्व धर्म सम्मेलन, भाईचारे और सहअस्तित्व तथा सह-जीवन की स्थापना के लिए एक ऐसे मच के निर्माण मे प्रयत्न करता आया है, जहा विश्व के सभी धर्मों के लोग जाति, धर्म और सकीर्णता की परिधि से निकल कर एक ऐसी आचार-सहिता का निर्माण करे—जिस की सार्वभौमिकता, विश्व जीवन और व्यापक आस्था का आधार हो। वर्तमान युग की यह सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है—और यह धर्म सम्मेलन उसी के समाधान मे एक विनम्र प्रयास है।

मेरी इच्छा है कि अमानुषिक कृत्यो की ओर आपका ध्यान आकर्षित करू। दिन-

प्रतिदिन तीव्रतम गति से बढती हुई युयुत्सा एव घोर हिंसा की वृत्तियो से मानव आतंकित होता जा रहा है। उसका भविष्य इतना अनिश्चित एव अव्यवस्थित हो गया है कि वह अपने अस्तित्व को चिंता और सन्देह की दृष्टि से देखने लगा है। नैतिक शोषण एव घृणा ने पारस्परिक प्रेम एव सौहार्द को जुगुप्सामय बना दिया है। विश्व के सभी दार्शनिक, समाज-सेवी, इतिहासकार और साहित्यकार इस बात से पूर्णत सहमत हैं कि हिंसा, भूख, गरीबी और बेकारी के मारे हुए लोग अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य है। अज्ञान, अभाव और अत्याचार की समस्याओ ने न केवल हमारी आध्यात्मिकता छीन ली है वरन् हमे सीमा, मत, रग और युद्ध जैसे विवादो मे उलझा दिया है।

हम गाधी-शताब्दी-वर्ष मे इस सम्मेलन का आयोजन कर रहे है— इसलिए ज्वलत समस्याओ की ओर अनायास ही हमारा ध्यान चला जाता है। यह निर्विवाद है कि विश्व-शान्ति एव विश्वधर्म बीसवी शताब्दी को गाधीजी की एक अद्भुत देन है। उनका सन्देश हमे उस ओर प्रेरित करता है जहा करुणा, क्षमा एव सेवा की महती आवश्यकता है। दरिद्र नारायण की सेवा गाधी जी के जीवन का महान् सदेश था। सत्य और अहिंसा उनके दिव्य जीवन के पर्याय थे। आज मानव उन सिद्धान्तो को भूलकर समुदाय, भाषा, प्रात और अधिकार के लिए जो वीभत्स दृश्य उपस्थित कर रहा है—उन्हे देखकर हम पुन धर्म की शरण मे जाने के लिए विवश हो जाते है। एक ओर सर्वनाश का दृश्य उपस्थित करने वाले परमाणु अस्त्रो का अबार है और दूसरी ओर एक ऐसी मासूम पीढी है, जिस का भविष्य खतरे मे है। क्या यह धर्महीनता एव भोगवाद का घृणित दृश्य नही है ?

ऐसी परिस्थिति मे धर्माचार्यो, धर्मानुयायियो, राजनीतिको एव राष्ट्रनायको का विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है कि वे मानव के हृदय-परिवर्तन को अपना लक्ष्य बनाए, तभी विश्व मे अमन एव चैन का विस्तार सभव हो सकता है। धर्म और केवल धर्म ही वर्तमान और भविष्य मे स्वर्णिम प्रभात का अशुमाली बन सकता है। विश्व की समस्त शक्तियो का ध्रुवीकरण यदि एक बिंदु पर हो सकता तो सच्ची मानवता की प्राणप्रतिष्ठा मे हम पूर्णतया सफल हो सकेगे और मनुष्य की सर्वविध स्वतन्त्रता का स्वप्न साकार होकर हमारे तन-मन को अधिक समृद्ध एव शाश्वत बना सकता है।

विज्ञान बडी तेजी से उन्नति कर रहा है। विज्ञान की सहायता से पृथ्वी के विभिन्न रहस्यो का उद्घाटन करने के पश्चात् मनुष्य के चरण चद्रमा तक पहुँच गए किन्तु विचारना यह है कि क्या उसने पृथ्वी की मानवता को सुखी एव समृद्ध बना लिया ? कही हमारी आखे नक्षत्रो के प्रकाश की चकाचौध मे न खो जाए। सभव है, हम नक्षत्रो की दूरी नाप ले किंतु अपने सहजीवन से रागात्मक सह-सम्बन्ध स्थापित किए बिना अनत रश्मि के अमृतपान से वचित रह जायगे। पारस्परिक सवेदनशीलता के अभाव मे हमारा प्रत्येक उपार्जन एव उत्पादन हमारे लिए अभिशाप बन जाएगा और प्रकृति की लीलास्थली इस धरती को छोड-कर शून्य मे भटक जाएगी।

लगभग तीन हजार वर्षो के विश्व-इतिहास के विभिन्न आयामो मे हमने यही पाया है कि धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण एव आचार ही सामाजिक सतुलन स्थापित करने मे समक्ष रहे है। जहा तक समस्याओ के नैतिक पहलू का सवाल है, वह धर्म से पूर्णतया प्रभा-

वित है, क्योकि समाज की सार्वभौमिकता, प्राणी-धर्म का तादात्म्य एव राष्ट्रीय, पारिवारिक एव विश्वजनीन अखडता का वही प्राणस्रोत रही है। किसी भी जाति, समाज या राष्ट्र की उन्नति का वृक्ष धर्म के अमृत से ही पुष्पित एव पल्लवित होता है। देश, काल और भाव के अनुसार विभिन्न धर्मों ने विभिन्न भौगोलिक परिवेशो मे अपना नामकरण कर लिया, जबकि मनुष्य भौतिक साधनो की विषमता का दास मात्र था, किन्तु आज उसकी भौतिक परिस्थितियो मे अद्भुत परिवर्तन हुए हैं और वह इस आशय पर आ पहुँचा है कि वह अपनी एकता की घोषणा कर सके।

आज की भयावह परिस्थिति विश्व मे अभय एवं अहिंसा की स्थापना मे अपना योगदान करना विश्वधर्म सम्मेलन की तीव्र आकाक्षा है जिसे उपलब्धि का रूप देना हमारा ध्येय है। विश्व धर्म सम्मेलन का प्रेरणामय इतिहास व्यवस्थित रूप मे सन् १९५४ से प्रारभ होता है—तभी से उसके मूर्तरूप का सृजन प्रारभ हुआ और सन् १९५७ मे एक विशेष विधा के रूप मे इसे प्रस्तुत किया गया। दिल्ली के लालकिले एव रामलीला मैदान मे आयोजित इस समारोह मे २७ देशों के प्रतिनिधियो ने भाग लिया और सर्वसम्मति से इसकी विधिवत् स्थापना हो गई। सन् १९६० मे इसका दूसरा अधिवेशन हुआ जिसके फलस्वरूप विदेशो मे इसकी शाखाए खोली गईं। इस महत्कार्य मे विश्व के प्रबुद्ध नागरिको, साहित्यकारो, धर्म-गुरुओ एवं समाजसेवियो ने अपना अपूर्व योगदान दिया। प्रतिनिधियो तथा धर्माचार्यों के सहयोग मे विश्वधर्म सम्मेलन अपना विश्वव्यापी स्वरूप एव कार्यपद्धति प्रस्तुत कर सका।

पृष्ठभूमि मे धर्मज्योति सन्त कृपालसिंह जी महाराज के अमूल्य सहयोग के हम सदा ऋणी रहेंगे जिन्होने सन् १९५७ से लेकर अब तक अपनी प्रगाढ निष्ठा एव लगन से विश्व-भ्रमण कर मानवता का सदेश जन-जन तक पहुँचाया। धर्म सम्मेलन उनको अपने अध्यक्ष के रूप मे पाकर सदा गौरव का अनुभव करता रहा है। मै अपने सह-अध्यक्ष बैरन ब्लम्बर्ग के अमूल्य सहयोग को भी भुला नही सकता हू।

वर्तमान मे हमारे समक्ष चतुर्थ सम्मेलन का स्वरूप है। हमारी आकाक्षा है कि धर्म के आधार पर विश्व-परिवार बनाने मे सैकडो हजारो धर्माचार्य एव कोटि-कोटि धर्मप्रिय जनता, विश्वास, मैत्री एव सहअस्तित्व के लिये एकजुट होकर प्रयत्न करे। धर्म को उसकी परपरागत रूढिवादिता एव पार्थक्य की सीमा मे बाहर खीचकर उसे सृजनशील केन्द्रबिन्दु पर लाना है जहाँ मूलभूत एकता का कल्याणकारी स्वरूप प्रस्तुत किया जा सके। धार्मिक एकता की सहायता से राष्ट्रो की सुरक्षा की गारन्टी हम न दे सके और मानव-जीवन मे सामजस्य स्थापित न किया गया तो विश्व के सामने एक बहुत बडी कठिनाई आने वाली है। सामाजिक और बौद्धिक-स्तर से मनुष्य कितना भी ऊचा क्यो न उठ जाय, यदि वह आध्यात्मिक एकता से वचित रह जाय तो युद्ध के भयकर परिणाम ही हमारे सामने आयेगे। अहिसा, सत्य और प्रेम धर्म के शाश्वत मूल्य है और उन्ही के द्वारा विश्व मे शाति स्थापित हो सकती है।

हमे इस सम्मेलन की फलश्रुति के रूप मे निम्नाकित तथ्यो पर विचार करना है —

(१) धर्म-विश्वविद्यालय की स्थापना—धर्म विज्ञान युग की सबसे बडी आवश्यकता है जिसकी पूर्ति के लिये एक ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना की जरूरत है जहाँ जाति, धर्म

और वर्ग के पारस्परिक मतभेद से रहित सब धर्मों के समन्वयात्मक अध्ययन के लिये कला, दर्शन, सस्कृति एव इतिहास, राजनीति-शास्त्र, समाजशास्त्र, नृतत्व-शास्त्र को समृद्ध किया जायेगा।

(२) धर्म-विश्वकोष का निर्माण—इस विश्व कोष के अन्तर्गत मानव-सस्कृति, सभ्यता और धर्म का सागोपाग अध्ययन, चितन प्रस्तुत किया जायेगा।

(३) विश्व के समस्त धर्माचार्यों एव विचारकों के सुझाव से एक ऐसी आचार-सहिता का निर्माण जिसकी सार्वभौमिकता विश्व मानवता की प्रत्येक इकाई के लिये समाचरणीय एव मान्य हो। मनुष्य से मनुष्य की दूरी किस प्रकार कम की जाय, इसके लिये एक सपर्क स्थल का चयन किया जाय।

(४) सयुक्त राष्ट्रसघ इस दिशा मे प्रयत्नशील है किंतु स्वस्थ आध्यात्मिकता के अभाव मे वह सफल नही हो सका है। अत आवश्यक है कि राष्ट्रो एव धर्मों के पारस्परिक मेल-जोल से एकता और सद्भाव की स्थापना की जाय।

मैं चाहता हू कि धर्मप्रतिनिधि विश्व मे सुख, समृद्धि एव सौहार्द की स्थापना के लिए मनुष्य के हृदय मे परिवर्तन लाने मे अपना महत्त्वपूर्ण योग दें। विश्व वात्सल्य एव करुणा की अजस्र धारा से मानवता के कलुष एव अशिव को धोकर सत्य, शिवम्, सुन्दरम् का विस्तार जनमानस एव जनजीवन मे किया जाय तभी ससार के महान् पुरुषो भगवान् महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, जरथुस्त, नानक, कन्फ्यूशियस आदि के उपदेशो को मूर्तरूप प्रदान करने मे हम सफल हो सकेंगे। और ऋषियो के इस महान सदेश "मिलकर चलें, मिलकर बोले, मिलकर काम करे और सदा मिलकर रहने की प्रतिज्ञा करे"—पर आचरण कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श को चरितार्थ कर सकेंगे।

●

प्राणिरक्षा और अभयदान

मुनि जी ने ससार के सभी प्राणियो की रक्षा के लिए भिन्न-भिन्न अवसरो पर अभियान चलाये है। मुनि जी का विश्वास है कि ससार का कोई भी प्राणी हो, उसकी उपयोगिता हम समझे या न समझे किन्तु कोई भी इस भूतल पर जीव अनुपयोगी नही है। चाहे जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपुर हो या चाहे भुजपुर हो। जमीन पर रेंगकर चलने वाले या आकाश मे उडने वाले सभी जीव आत्मा के नाते समान हैं, उपयोगी है और सृष्टि के सचालन मे उन सब का योगदान है।

'परस्परोपग्रहो जीवानाम्-' का सिद्धान्त समूचे विश्व के कल्याण का आश्वासन है। अगर जगत् के सभी जीवो के प्रति शोषण या भक्षण की भावना हटा कर मानव उपकारी वृद्धि या कृतज्ञता की भावना का प्रवाह [illegible] दें तो वसुधा को कुटुम्ब बनने मे क्या देर लगे।

आप जो नि श्वास छोडते है वह आप के लिए जहर है, कार्बन है, पेड, पौधो, पत्तो एव घास के लिए जीवन है, भोजन है, सहारा है और पोषण-तत्त्व है। और पेड-पौधे जो आक्सीजन छोडते है जो उनके लिए अनुपयोगी है वह आप के लिए प्राणाधार है।

जिन मक्खी-मच्छरो को आप अनुपयोगी मानते है वह ही नर-मादा वृक्षो मे एक दूसरे के पराग पहुचाकर फल आने के लिए रास्ता साफ करते हैं। अगर मादा वृक्षो का सम्बन्ध नर वृक्षो से किसी तरह सभव ही न हो तो फल का उत्पादन सर्वथा बद हो जाये।

सर्प, बिच्छू, नील गाय, रीछ, सिह आदि जितने बनैले जीव है इन सब का उपयोग है। सभव है कि हम उसे पूरी तरह आँक न सके किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा कि आप उन सबके योगदान का मूल्याकन कर सकोगे।

जगली जीवो का शिकार बद करने, पशु-वध बन्द कराने, कुक्कर, बकरे, गाय, भैस आदि सभी जीवो की रक्षा के लिए मुनि जी प्रयास करते रहे है।

मध्यप्रदेश, बम्बई और महाराष्ट्र मे मछली बचाने, कुत्तो की रक्षा करने, दिल्ली

मे कसाईखाने कतिपय दिनो के लिए बद कराने और गोरक्षा के लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाते रहे हैं।

गुडगाँवा मे चोगान माता पर सुअर-बध की क्रूर प्रथा है। गुडगावाँ के लोगो की बडी इच्छा थी कि मुनि जी चाहे तो गुडगाँव के माथे पर लगा यह सुअर-बलि का कलक मिट सकता है। और फिर मुनि जी की यह जन्म-भूमि है, उन्हे यहाँ आकर अवश्य प्रयास करना चाहिए।

गुडगाँव के सभी लोगो ने बडा आग्रह किया मुनि जी ने मान लिया और सुअर बलि-विरोध मे अभियान चालू कर दिया।

मुनि जी का अभियान निराला होता है। वह कभी भी धर्म स्थानो मे बैठकर कोरा हिसा-विरोध नही करते, अपितु जहाँ हिसा हो रही हो वही से हिसा-विरोधी कार्य सचालित करते है। सुअर बलि-विरोधी आन्दोलन का सूत्रपात भी चोगान माता के प्रागण मे बैठकर ही किया। रातभर वहाँ ठहरे, चारो ओर सुअर-बधिको का आवास और बीच मे मुनि जी महाराज। रातभर बैठक, पचायत चलती रही, सारा शहर मुनि जी की तरफ, बलि समर्थक हरिजन एक तरफ। रातो-रात हरिजनो के समर्थन मे सैकडो हरिजन नेतागण एकत्रित हो गये। एक बहुत बडा हगामा मच गया।

चारो ओर चर्चा, तर्कों-वितर्कों की बौछारे। क्यो जी जैन मुनि अपना धर्म नही छोड सकते तो हमारे धर्म मे ये हस्तक्षेप करने वाले कौन ?

दूसरा तेज स्वर करते हुए कहने लगा कि सुअरो को नही मारा गया तो क्या इनकी फौज बनाई जायेगी ?

तीसरा कहने लगा कि चैत्र और बैसाख मे दो महीने रविवार से मगलवार तक यह मेला लगता है, ३०-३५ हजार सुअरो के बच्चो की बलि दी जाती है, अगर ऐसा नही हुआ तो ये सुअर सारे देश के अन्न को खा जायेगे।

अच्छा जी, अगर हम बलि बन्द कर दे तो हमारी देवी-पूजा का क्या होगा। 'जीव के बदले जीव बच्चो की रक्षा के लिए' ही सुअरो की बलि दी जाती है। एक जीव की बलि देवी के लिए कर देने से हमारे जीव की रक्षा हो जाती है। यह तो हमारा सिद्धान्त है और अगर बलि बन्द हो गई तो हमारे बच्चो की जान कौन बचायेगा।

ऐसी कितने कुतर्क उठे, आरोप लगे, मारने की धमकियाँ दी। दिल्ली के २०-२२ सज्जन रात भर मुनि जी के साथ इन हरिजन-समूहो का समझाते रहे किन्तु वे हरिजन भाई टस से मस न हुये। अत मे आध्यात्मिक बल के सहारे ही विजय प्राप्त हुई।

मुनि जी ने सब हरिजन बन्धुओं को ललकारते हुए कहा कि जोर से हिंसा बन्द करने मे हमारा विश्वास नही है और आप लोग मान नही रहे हो किन्तु भरोसा रखो, सारी रात जो वीत गई है, दिन के बारह बजे तक आप सब लोग अवश्य मान जाओगे।

मुनि जी यह कहकर शहर के जैन स्थानक मे चले आये और वे हरिजन बन्धु मुनि जी पर फौजदारी मुकदमा चालू करने के लिए कोर्ट जा पहुचे।

चाहते तो थे मुनि जी पर रात को दिल्ली के गुण्डो से पिटवाने का केस करना किन्तु जिलाधीश ने उन्हे बुलाकर समझाया कि मुनि जी हमारे देश की महान् विभूति है,

राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद का मुनि जी की प्रशसा एव बलि-विरोध मे लिखा हुआ उन्हे दिखाया गया। हरिजनो का मन बदल गया। सीधे मुनि जी के पास आकर चरणो में गिर गये, सरकारी कागज पर सभी हरिजनो ने लिख कर दे दिया कि हम आज से सुअर बलि बन्द करते हैं। बलि बन्द हो गई। किन्तु चोरी से अब भी होती है, व्यापक रूप से बलि अवरुद्ध हो गई, किन्तु, गुप्तरूप से अब भी होती है। बलि-प्रथा हटाने के लिए अभी और बलिदान करना होगा तभी इस कुप्रथा का अत होगा।

●

गोरक्षा आन्दोलन

गो-वश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगवाने के लिए साधु-सतो ने जिस गोरक्षा आन्दोलन का सूत्रपात किया था, उसकी चरम परिणति ७ नवम्बर १९६६ को ससद् भवन पर १० लाख नर-नारियो के विराट् प्रदर्शन के साथ हुई। उसमे सम्मिलित शान्तिप्रिय गोभक्त, निर्दोष महिलाओ व अबोध बालको को लाठी-चार्ज आसू गैस एव धुआधार गोला-बारी का निशाना बनाया गया। इन नृशस हथकण्डो से सरकार ने इस आन्दोलन को कुचल देने का प्रयास किया।

जैन मुनि श्री सुशील कुमार आरम्भ से ही इस गोरक्षा यज्ञ के सूत्रधार थे, सर्वोच्च समिति के सदस्य, उक्त ऐतिहासिक प्रदर्शन के सयोजक एव सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति के अध्यक्ष के रूप मे उन्होने समय-समय पर दिशा-निर्देश करते हुए गोरक्षा आन्दोलन को अपना समर्थ नेतृत्व प्रदान किया। उनकी कृतियो, वक्तव्यो और उद्गारो के आधार पर ही इस अश मे गोरक्षा आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि, घटनाक्रम एव निष्कर्ष पर प्रकाश डाला गया है।

स्वामी दयानन्द, अवधूत सियारामदास और राजस्थान के निर्भीक सन्त स्वामी शकरानन्द विरक्त, गोरक्षा आन्दोलन के इन प्रणेताओ की त्रिमूर्ति रामनवमी के दिन रामलीला मैदान मे प्रकट हुई तथा आन्दोलन को बल प्रदान करने के लिए धरना देने का सकल्प किया।

मुनि श्री सुशील कुमार इस आन्दोलन के उद्घाटनकर्ता के रूप मे आए थे, उन्होने कहा कि मै गोरक्षा को सस्कृति की रक्षा तथा राष्ट्रीयता का रूप मानता हू। गो बचेगी तो देश बचेगा। किन्तु आन्दोलन को सही दिशा मे निर्देशित करने के लिए हमे सतत् सतर्क एव जागरूक रहना होगा तथा विवेकपूर्वक इसका मार्ग निर्धारित करना होगा।

३० मार्च १९६६ रामनवमी के दिन यह सकल्प व्यक्त करके मुनि जी रामलीला

मैदान से चले गए। नई दिल्ली के जैन भवन म उन्होने दिल्ली की समस्त धार्मिक सस्थाओ एव जातीय सगठनो को आमन्त्रित किया। हिन्दू महासभा के नेता प्रो० रामसिह, राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के सर सचालक श्री गोलवलकर, नामधारी सन्तो के सद्गुरु जगजीत सिह जी महाराज, गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अध्यक्ष व महामन्त्री, गुरुनानक मिशन के सस्थापक तथा बौद्ध एव जैन प्रतिनिधियो के अतिरिक्त श्री गोस्वामी गिरधारीलाल, अन्य सन्यासी मडल २ अप्रैल १९६६ को हुई सभा मे उपस्थित हुए। यद्यपि सभी महानुभाव गोवश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगवाने की सब एक स्वर मे माग कर रहे थे, किन्तु कुछ कर गुजरने की हिम्मत नही थी। मुनि जी ने इस ध्येय की प्राप्ति के लिए देश के विभिन्न भागो मे दृढता से एकता के निर्माण का उद्घोष किया। उन्होने कहा कि यदि सब खास वर्गों के नेता अपना सहयोग प्रदान करे तो गोहत्या का कलक मिटना कठिन नही है।

तदनन्तर इसी उद्देश्य को लेकर उक्त सगठनो की ३ और बैठके हुई।

८ अप्रैल को पुरी के जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी निरजन देव तीर्थ जी महाराज स्वय पधारे और कहा कि गोरक्षार्थ प्राणो की आहुति देने का अवसर अब आ गया है। उन्होने कहा कि चाहे सैकडो साधु-सन्यासी धरना दे दे, पर जब तक जैनियो मे मुनि सुशील कुमार जी महाराज, शकराचार्यो मे मैं, श्री गोलवलकर जी और प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी आदि आमरण अनशन को प्रस्तुत नही होगे तब तक गोहत्या बन्द नही हो सकती। मुनि जी ने कहा कि आमरण अनशन अन्तिम हथियार है। यदि सुप्त जाति किसी भी प्रकार न जागी तो इस मार्ग के अवलम्बन की आवश्यकता होगी। अभी निर्णायक रूप से कुछ नही कहा जा सकता। इसके पूर्व सम्पूर्ण जन-मानस को आन्दोलित करना होगा। समूचे राष्ट्र की आत्मा गोहत्या बन्दी के लिए जब तक पुकार नही उठेगी तब तक गोहत्या से प्राप्त लाभ का लोभ ध्वस्त नही होगा और सास्कृतिक सरक्षण के सस्कार को न जगाया जा सकेगा।

वर्ष १९६६ का महावीर जयन्ति के अवसर पर मुनि श्री ने समस्त जैन समाज को गोरक्षणार्थ प्राण-प्रण से जुट जाने का सकल्प कराया और देश के कोने-२ से यह उत्साहपूर्वक समाचार मिला कि जैन समाज मुनि जी के नेतृत्व मे तन-मन-धन से धर्म-युद्ध मे भाग लेगा।

अगस्त मास के प्रथम सप्ताह मे सवदलीय गोरक्षा महाभियान समिति की स्थापना हुई। तदन्तर ७ सदस्यीय सर्वोच्च समिति का गठन हुआ। जिसमे मुनि श्री सुशील कुमार, श्री गोलवलकर, श्री करपात्री जी महाराज, श्री पुरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य जी, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, श्री हनुमान प्रसाद पाद्दार और स्वामी गुरुचरण दास थे। २१ अगस्त को दिल्ली के बारह टूटी चौक पर मुनि श्री के सान्निध्य मे २५ हजार नर नारियो की विराट् सार्वजनिक सभा मे समिति के नेताओ ने घोषणा की और कहा कि बैल और बछडे सहित सम्पूर्ण गोवश की हत्या को जब तक अवैध घोषित नही कर दिया जाता तब तक कोई भी राष्ट्रीय निष्ठ भारतीय चैन से नही बैठेगा। गोहत्या बन्दी की आवाज जनता की आवाज है और इस देश मे गाय की हत्या प्रजातन्त्र के हनन के समान होगी।

इन्ही दिनो तत्कालीन खाद्य मत्री श्री सुब्रह्मण्यम् ने इस सम्बन्ध मे सरकारी नीति की घोषणा कर दी जिसमे राज्यो को विषय बताकर मामले को टाल दिया गया। १ सितम्बर को भारत गोसेवक समाज के कार्यालय मे हुई बैठक मे सरकारी नीति पर तीव्र

असंतोष व्यक्त किया गया। मुनि जी ने शातिपूर्वक किन्तु सुदृढ रूप अपनाने पर जोर दिया।

५ सितम्बर प्रात काल मुनि श्री सुशील कुमार के नेतृत्व मे एक प्रतिनिधि मडल ने प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी से मिलकर निम्नलिखित तीन माँगे प्रस्तुत की '—

(१) गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित किया जाय।

(२) नवम्बर मास से पूव कानून बनाकर गोवश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाय तथा

(३) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक उच्चस्तरीय समिति गठित की जाय, जो केन्द्र एव राज्यो को निर्देशन करे। उस दिन सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पजाब की ओर से आयोजित प्रदर्शन के बाद इसी आशय का एक ज्ञापन तत्कालीन गृहमत्री श्री नदा जी को भी प्रस्तुत किया गया।

२५ अक्तूबर को एक सम्वाददाता गोष्ठी म मुनि जी ने घोषणा की कि यह आन्दोलन सर्वथा असाम्प्रदायिक एव गैर-राजनीतिक है जिसने राष्ट्र मे सास्कृतिक एकता की लहर उत्पन्न कर दी है। उन्होने कहा कि गोवश की रक्षा मे वर्तमान खाद्य सकट से भक्ति के अतिरिक्त देश की आर्थिक सास्कृतिक प्रगति का राज भी निहित है।

अन्त मे ७ नवम्बर, १९६६ का वह दिन भी आया जब अहिंसा मे अटूट विश्वास रखन वाले मुनि श्री सुशील कुमार के सयोजकत्व मे ससद् भवन के बाहर १० लाख गो-भक्तो का ऐतिहासिक प्रदर्शन हुआ तो राजधानी मे अब तक का विराटतम प्रदर्शन माना गया। विभिन्न धर्मावलम्बियो ने विशाल सख्या मे सम्मिलित होकर अपूर्व एकता का परिचय दिया। मच पर नेताओ के भाषण हो रहे थे कि कुछ निहित स्वार्थ वाले राजनीतिक तत्वो ने स्थिति का अनुचित लाभ उठाना चाहा। मुनि जी ने जनता मे शान्त एव अहिसक बने रहने की अपील की, जो पूर्णत कारगर हुई। गोभक्त समुदाय सवथा शान्त था कि पुलिस ने अश्रुगैस छोड दी और तदन्तर लाठीचार्ज एव धुआधार गोलीवर्षा शुरू कर दी। सरकारी घोषणा के अनुसार ७ व्यक्ति मारे गये तथा १४१ घायल हुए। वस्तुत हताहतो की सख्या इससे बहुत अधिक थी।

यह दमनचक्र जारी रहा और निर्दोष गोभक्तो की भारी धर-पकड हुई। दूसरे ही दिन करपात्री जी ५०० गोभक्तो सहित सत्याग्रह करते हुए पकड लिए गए।

गोभक्त प्रदर्शनकारियो का ज्ञापन मुनि जी ने १७ नवम्बर को प्रधान मत्री के ससद् भवन स्थित कार्यालय मे भेंट कर उन्हे प्रस्तुत किया। ७ नवम्बर को हुई जनहानि से सतप्त होकर आत्मशुद्धि के हेतु उन्होने तीन दिन का उपवास किया।

पुरी के जगद्गुरु शकराचार्य जी ने २० नवम्बर को सम्पूर्ण गोहत्या बन्दी के लिए आमरण अनशन शुरू कर दिया। वे बन्दी बना लिए गए। मुनि जी ने सरकार से वार्ता का निमन्त्रण यह कहकर ठुकरा दिया कि जब तक आन्दोलन के सभी नेता रिहा नही कर दिए जाते तब तक सरकार से कोई बात नही हो सकती।

२५ नवम्बर को सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति के अध्यक्ष के रूप मे पत्रकार परिषद् को सम्बोधित करते हुए मुनि जी ने कहा 'यदि सरकार श्री शकराचार्य जी जैसे धार्मिक नेताओ को जेल मे ठूसकर दमन द्वारा आन्दोलन को समाप्त करने पर तुल गई है

तथा बातचीत के द्वारा समस्या के हल के लिए तैयार नही, तो बाध्य होकर हमे धार्मिक अनशन का उपक्रम स्वीकार करना पडेगा। हम २ दिसम्बर तक प्रतीक्षा करेंगे अगर तब तक सतोषजनक उत्तर न मिला तो मेरा धार्मिक अनशन शुरू हो जायेगा।'

३० नवम्बर को प्रधानमत्री का एक विस्तृत पत्र मुनि जी को प्राप्त हुआ, जिसमे कहा गया कि भारत सरकार पूर्ण गोहत्या बन्दी की मांग पर वार्ता के लिए तैयार है। आप अपने साथियो सहित बातचीत के लिए आएँ तो प्रसन्नता होगी। प्रधानमत्री ने मुनिजी से अनशन का निश्चय त्यागने की अपील की।

१ दिसम्बर को रात्रि के ११ बजे मुनिजी ने अपना उत्तर पहुँचा दिया कि आपसे वार्ता के आमन्त्रण का स्वागत करता हूँ। पर अनशन तभी रुक सकता है जब कि आप सर्वोच्च समिति के दो बन्दी नेताओ श्री करपात्री जी तथा श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी की रिहाई का आदेश न दे दे। पर देश के अनेक गणमान्य नेताओ ने व्रत रोकने के लिए मुनिजी पर दबाव डाला। मुनिजी ने उत्तर दिया कि कुन्जी सरकार के हाथ मे है। गोभक्त नेताओ की रिहाई पर ही अनशन समाप्त होगा अन्यथा नही।

२ दिसम्बर को मुनिजी स्वय अनशन पर बैठ गए। गोभक्त नेताओ की रिहाई के साथ ७ दिसम्बर को अपना अनशन स्वामी करपात्री जी महाराज के अनुरोध पर तोडा।

२५ दिसम्बर को गृहमत्री श्री चव्हाण की उपस्थिति मे प्रधानमत्रीजी के निवास पर हुई बैठक मे मुनिजी ने कहा कि गोरक्षा की माग को दमन एव धमकियो से नही कुचला जा सकता। यदि सरकार सचमुच जन भावनाओ का आदर करते हुए जगद्गुरु शकराचार्य जी की प्राण रक्षा करना चाहती तो उसे ढुलमुल नीति का परित्याग कर गोवश को सर्वथा अवैध घोषित कर देना चाहिए।

●

विचार-दर्शन

नये-नये धर्म नये-नये रूप

नये-नये धर्म और नये-नये रूप मे ससार के सामने आये और एक ही मुल्क मे एक से अधिक धर्मों के अनुयायी रहने लगे। सब लोग अपने-अपने धर्मों की बातो को ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि मानने लगे। फल यह हुआ कि विभिन्न धर्मों के अन्दर आपस मे कटुता बढी और सैनिक एव राजनैतिक रूप मे ही नही, दार्शनिक रूप मे भी उनमे बराबर झगडा चलता रहा। ससार का धार्मिक इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणो से भरा पडा है। उन मे धर्म के नाम पर इतना ज्यादा खून खराबा हुआ, जिसे देख कर रोगटे खडे हो जाते हैं। धार्मिक गुरुओ को जलाया गया, फाँसी दी गई, कत्ल किया गया। शासन करने वाली सत्ता को जिसनेअगीकार किया उसके अलावा दूसरे धर्मों को मानने वाली प्रजा पर अनेक तरह का जुल्म ढाया गया और सारे ससार के इतिहास मे एक बार नही, हजारो बार धार्मिक मदान्धता एव क्रूरता का प्रयोग किया गया। इससे धर्म के सुन्दर चेहरे पर कालिख लग गई और जिस धर्म से समस्त ससार को सभ्यता, समानता, शान्ति एव शिष्टता की प्रेरणा मिली थी, वही धर्म स्वय ही इन गुणो को नष्ट करने के लिए प्रधान साधन बन गया। यह बात भी ठीक है कि बीच-बीच मे इस ससार के अन्दर अच्छे-अच्छे आदमी आये, अच्छे-अच्छे शासक पैदा हुए तथा उनके जमाने मे सभी धर्मों को एक जगह एकत्रित करने की चेष्टा की गई। लेकिन इस काम मे सफलता नही मिल सकी। इसी कारण से अधिकाश सख्या मे विभिन्न धर्मों को मानने वाली जनता मे एक दीवार खडी हो गई तथा किसी को अपने से भिन्न धर्मों के मानने वालो के बारे मे कोई जानकारी ही न रह गई। धर्मों के बीच इस तरह की लडाई का किस तरह का खतरनाक नतीजा हो सकता है, इसका सबसे मुख्य उदाहरण हिन्दुस्तान का दो भागो मे बँट जाना है।

हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के अनुयायियो के बीच इस लडाई का कितना खतरनाक परिणाम हुआ, यह इसी से मालूम पडता है कि कई हजार लोगो को अपनी भूमि

और घरबार छोड कर बहुत दूर जा कर बसना पडा। पुराने जमाने मे भी रोमन कैथोलिको और प्रोटेस्टेन्टो के बीच भी ऐसे ही खतरनाक झगडे हुए थे। इसी तरह इस्लाम की मार के सामने पारसियो को अपना घरबार छोड कर हिन्दुस्तान मे आना पडा और इन पारसियो मे से जो लोग ईरान मे रह गये, उन पर अनेको तरह के जुल्म ढाये गये। इस्लाम को स्वय भी ईसाइयत के सामने ईसाइयत को इस्लाम के सामने बहुत बुरे अत्याचारो का सामना करना पडा। इसी तरह यहूदियो को भी पूरे २५ वर्षों तक ठोकरें खाते हुये अस्त-व्यस्त-त्रस्त रह करके फिरना पडा। चीन मे भी ताओ धर्म, कन्फ्युशियम और बुद्ध धर्म के बीच मे अनेक झगडे हुए और उनमे काफी खून खराबा हुआ। इससे ससार का धार्मिक इतिहास खून से लाल ही लाल है। आज अगर धर्मों के नाम पर दुनिया मे भय पैदा होने लगा है, तो कोई ताज्जुब की बात नही है। अगर यही धर्मो के व्यावहारिक जीवन मे उसूल हुए, तो इतने कत्ल धर्मों के नाम पर क्यो हुए, यह सवाल है। इस सवाल का जवाब देना हमारे लिए बिल्कुल आसान नही है। अगर हम सही तौर से जवाब न दे पाये और इस रोग का ठीक इलाज न ढ़ढ पाये तो धर्मो की कीमत ससार मे कम ही होती चली जायगी। इसके लिए हमे आपस मे बैठ कर यह समझना है कि हमारे बीच ऊँचे सिद्धान्तो के होते हुए भी झगडे क्यो हो रहे है ?

जहाँ तक मुझे मालूम है, इन सब झगडो का कारण यह है कि जब धर्मो के मूल प्रचारक, पैगम्बर या मसीहा इस ससार मे न रहे तो उन धर्मो की बागडोर उनके शिष्यो के हाथ मे आई। उन्होने राजनीतिक और सैनिक लिबास ले लिया और धर्मा के नाम पर अलग-अलग फिरका और जातियो के बनाने एव दूसरो को लूटने का काम अपनाने लगे। चूकि इन फिरका के धम आपस मे अलग-अलग थे, इसलिये फिरके जो कि अधिक उन्नति कर जाते थे, वे एक-दूसरे के नाम पर अन्याचार एव अन्याय करने लगे। इसी तरह धर्मों के इतिहास के अन्दर अलग-अलग जातियो की साम्राज्य-लिप्सा और लूटने-खसोटने की प्रवृत्ति छिपी हुई है और इसी प्रवृत्ति ने धम के इतिहास को खून के कतरो से भर दिया। इस तरह जिसको हम धर्म का इतिहास कहते है, वह सही माने म धर्म का इतिहास नही है। इस इतिहास के बनाने मे चाहे किसी भी धर्म का नाम लिया गया हो, चाहे वह बुद्ध धर्म हो, ईसाइयत हो, यहूदी धम हो या हिन्दू धर्म हो, य इतिहास इन धर्मों के नाम पर बनाये भले ही गये हो, लेकिन असल मे वे इन धर्मों के कब्रिस्तान पर ही खडे है। अगर ऐसा नही तो मुझे यह समझ मे नही आता कि उन महात्माओ के नाम पर उनके अनुयायियो ने ससार के सारे देशो को फतह करने का विजय-अभियान किस तरह उठाया ? इन देशो मे भी पोर्चुगीज, कैथोलिक पादरियो ने लोगो को जबरन ईसाई बनने के लिए जो कारनामे किये, वह किसी से छिपे हुए नही है। इसी तरह मुझे यह भी समझ मे नही आता कि हिन्दू धर्म के अन्दर मनु क दस धर्मो के लक्षण धर्मों के प्रधान लक्षण माने गये है। लेकिन इन लोगो मे इस तरह अहकार कैसे छाया कि लोग एक-दूसरे को छूने आदि मे घृणा करने लगे। मुझे यह भी समझ मे नही आता कि जिन महात्मा बुद्ध ने प्राणी मात्र के लिए दया भाव का उपदेश दिया था तथा छोटी-से-छोटी तकलीफ देना भी आपत्तिजनक अर्थात् इसे बहुत बडा पाप समझा जाता था, उन्ही के मानने वाले बुद्ध धर्मावलम्बी किस तरह से आज ससार

मे सबसे प्रबल मासाहारी है। इसी तरह मुझे यह भी समझ मे नही आता कि जिन मुहम्मद साहब ने अपने पडोसियो के प्रति पूरा प्यार बर्तने का उपदेश दिया था उन्ही के अनुयायियो ने एक हाथ मे तलवार और दूसरे हाथ मे कुरान लेकर एटलाटिक से लेकर प्रशान्त महा-सागर तक किस तरह खून की नदियाँ बहाई । मुझे यह समझ नही पडता कि जिन जैनियो के लिए एक पतगे को मारने मे भी पाप लगता है उन्ही मे से किस तरह आज हजारो नवयुवक मास तक खाते है, शराब पीते है, ब्लैक करते हैं और रिश्वत लेते व देते है। इन सब बातो से मुझे यही समझ पडता है कि इन सब धर्मो के अनुयायी अपने मूल धर्म के सिद्धान्तो के कठोर शत्रु हो गये है तथा उन धर्मो के मूल आदर्शो एव नियमो को तो इन्होने भुला ही दिया है। उन धर्मों का जो अश रह भी गया था वह भी सूखते-सूखते अब बिल्कुल खाली हो गया है। यही कारण है कि आज सारा धर्म इतना विकृत हो गया है कि ससार के बहुत से लोग इन सभी धर्मों को बडी नफरत से देखते हैं। ससार मे कुछ राष्ट्रो के लोग तो आज धर्म का नाम लेने को ही पाप समझते हैं। उसके पीछे उनके मन के अन्दर धर्मो का यह विकृत रूप ही काम करता है। अगर इस विकृत रूप का हम परिष्कार न कर सके तो जिस तरह एक बाघ के सामने हजारो भेडो का झुड एक साथ ही भागता है उसी तरह कि भेडे भागने पर भी बाघ से छुटकारा नही पा सकती हैं उसी तरह ये धर्म भागने की चेष्टा करते हुए भी भाग नही सकेंगे और विज्ञान की हवा एव विज्ञान की भावना इन सभी धर्मो को एक साथ ही खा जायगी।

तो हमे चाहिए कि हम इन धर्मों के रूप को परिष्कृत करे। इन धर्मों के बनने के बाद इनमे जो बुराइया फैली है उनको दूर करें। सबसे पहले हर एक आदमी को चाहिए कि वह अपने-अपने धर्म की बुराइयो को दूर करें तथा अपने-अपने धर्मों के सम्मेलन बुला करके इन धर्मों की बुराइयो पर विचार करे और उनको दूर करने की चेष्टा करे। क्योकि हर एक धर्म के पैगम्बरो के अपने एक छोटे दायरे रहे हैं। इसलिए हमे चाहिए कि इन पैगम्बरो के उपदेशो को शिरोधार्य करे, लेकिन उन्हे स्पष्ट रूप से समझने की भी चेष्टा करे, ताकि इतिहास मे जो फिरकेबाजी रही है, उसे भी हम समझ सकें। हर एक धम के अनुयायी अपने-अपने धर्म सम्मेलन करने पर जिस नतीजे पर पहुँचे, उन नतीजो को फिर दूसरे धर्मा-नुयायियो के साथ बैठ करके समझने की चेष्टा करें, ताकि हर एक धर्म को यह पता लग सके कि हमे दूसरे धर्म वाले किस नजर से देखते है। तब हमारा अहकार कुछ कम हो जायेगा तथा इतिहास के कुछ और धर्मों की तस्वीर भी स्पष्ट हो जायेगी। दूसरा काम यह होगा कि अलग-अलग धर्मो के आचार्य और अनुयायी एक साथ बैठ कर के यह फैसला करे कि एक धर्म का दूसरे धर्मों से किन-किन बातो मे मतभेद है और वह मतभेद किस तरह से दूर किया जा सकता है। इस बारे मे हमे धर्मों के बीच पचशील के सिद्धात को लागू करने की चेष्टा करनी चाहिए। अगर धर्मों के बीच इस पचशील के सिद्धात को हम लागू कर देते है, तो हम यह देखेंगे कि ये झगडे शीघ्र ही खत्म हो जायेगे और एक धर्म दूसरे धर्म को इज्जत की निगाह से देखना शुरू कर देगा। यह मानकर चलना ठीक नही होगा कि एक धर्म मे जो कुछ लिखा है, वही ब्रह्म-वाक्य है, क्योकि अगर ऐसा मानकर हम चलते हैं तो किसी तरह कोई झगडा समाप्त नही हो पायेगा। आज राष्ट्रो के बीच मे भी आपस मे जो

झगडे होते है, वे बातचीत, सलाह तथा समझने आदि से तय होते है। उसमे जो उचित पक्ष होता है, उसको ही दूसरे पक्ष वाले भी स्वीकार करते हैं। इसी तरह अगर धर्मों के आचार्य-गण भी काम करें, तो धर्मों मे होने वाले आपस के झगडे धीरे-धीरे, सुलझाये जा सकते हैं। इसलिए यह मानना चाहिए कि धर्मों के मूल उपदेशो के अन्दर ज्यादा अन्तर नही है तथा अगर इस मूल उपदेश के दायरे मे हम काम करें, तो इन झगडो का सुलझाना बहुत मुश्किल काम नही है। इसके लिए हमे अहकार, अध-विश्वास, साम्राज्य-लिप्मा एव जबरदस्ती दबोचने की प्रवृत्ति का परित्याग करना पडेगा। एक धर्म का दूसरे धर्म से अगर किसी प्रकार का मतभेद है तो इस मतभेद को हमे नैतिक माप से देखना पडेगा। जो पक्ष नैतिक माप से कमजोर पडता है उस पक्ष को दूसरे पक्ष के मुकाबले मे अपनी जिद छोडनी पडेगी। इस तरह धीरे-धीरे ये सब झगडे छोटे-छोटे दायरो मे होते चले जायेंगे और एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि हम देखेंगे कि यह झगडा बहुत कम हो गया है। जब झगड़े धीरे-धीरे कम पड जायेंगे, तो हम एक जगह बैठ कर के कायक्रम बनाने मे सफल होगे। हमे याद रखना चाहिए कि ससार के सारे लोगो मे से अधिकाश लोग अपना जीवन किसी न किसी धर्म के नाम पर ही बिताते है। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम धार्मिक साम्राज्यवाद को खत्म कर दें। जब सभी धर्म ऊचे और उत्तम कोटि के है, तो मेरी समझ मे नही आता कि क्यो एक धर्म दूसरे धर्म के अनुयायियो को अपने मे मिलाने की चेष्टा करता है। अगर समझ-बूझकर कोई एक आदमी एक उसूल से दूसरे उसूल मे जाता है तो वह एक अलग बात है। लेकिन लोभ से, लालच से, जोर-जबरदस्ती से, बहलावे से अगर कोई एक धर्म अपना प्रचार करना चाहता है तो वह अपने पर ही कुठाराघात करता है। मुझे इस बात पर थोडा गर्व अवश्य है कि भारत ने कभी भी धर्म प्रचार करने के लिए तलवार या रुपये पर भरोसा नही किया। यह एक बडी चीज थी और अगर ससार के सारे धर्म इस सिद्धान्त को अपना लेते हैं तो यह ससार के लिए बहुत बडी बात होगी। आज अगर फ्रास पर जर्मनी हमला करता है या चीन हिन्दुस्तान पर हमला करता है तो दुनिया के लोगो को बहुत बुरा लगता है। फिर अगर ईसाइयत इस्लाम पर हमला करती है या इस्लाम हिन्दू-धर्म पर हमला करता है तो यह कैसे बुरा नही है? यह मुझे समझ मे नही आता। ईसामसीह और हजरत मुहम्मद इसके बहुत बडे परिपापक ह लेकिन इसके लिए तो ईसाई और मुसलमान बनने की आवश्यकता ही क्या है? महापुरुषो के उपदेशो का तो मै दूर से ही स्वाद ले सकता हूँ जिस तरह कि गुलाब के बगीचे की खुशबू सभी को दूर स ही मिल जाती है। इसी तरह अगर कोई कृष्ण, पातजलि या वेदव्यास के प्रशसक हे तो उन्हे हिन्दू बनने की क्या आवश्यकता है, यह मुझे समझ नही पडता। बहुत से देशो के अन्दर विभिन्न धर्मो के लोग आपस मे एक ही साथ खाते-पीते ह, आपस मे रिश्ता कायम करते है और एक-दूसरे के देवस्थान की बहुत बडी इज्जत करते है, यह बडी अच्छी चीज है तथा इस चीज को हमे धीरे-धीरे बढते हुए देखना चाहिए, तभी हमारे मनो की दरारे और दीवारे दूर होगी तथा तभी हम कह सकेंगे कि हम सही माने मे एक-दूसरे की इज्जत करते है। अगर किसी धम को अपने धार्मिक नियमो के अनुसार अलग बैठ कर खाने का आदेश है तो वह अपना काम एकान्त मे बैठ कर कर सकते है। लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि वे अपने को औरो से महान् समझे। इसी तरह अगर कोई फिर्का

अपने रक्त की शुद्धता के लिए अपने अन्दर के रिश्तो मे विश्वास करता है तो यह समझ मे आता है। फिर भी हमे यह भी देखना चाहिए कि एक ही धर्म के अन्दर बहुत-सी जातिया एव देशो के रक्त मिले है और रक्त-शुद्धता का अभिमान किसी भी जगह माने नही रखता। इन धार्मिक मतभेदो को हम जब तक ईमानदारी से कम नही करेंगे तब तक यह काम अधूरा ही रहेगा और धर्म के लिए भविष्य का खाका बाहर ही रह जायेगा।

धर्म के आपस के झगडो को छोड कर अगर हम देखते हैं तो हमे मालूम पडता है कि धर्म के लिए खतरा दूसरे धर्मों से नही बल्कि विज्ञान की भौतिक प्रवृत्ति से है। मैं इस बात से सहमत नही हूँ कि धर्म को समाजवाद या साम्यवाद से कोई बडा खतरा है। लेकिन मैं इन बातो को जरूरी मानता हूँ कि मनुष्य की विज्ञान के रूप मे जो बढती हुई शक्ति है मनुष्य पर जो उसका नशा चढता जा रहा है उसमे धर्म को अवश्य खतरा है। आज मनुष्य को विज्ञान की बदौलत कुछ शक्ति मिली है, कुछ ज्ञान बढा है एव कुछ उत्पादन करने की शक्ति बढी है तथा सोचने की शक्ति मे भी वृद्धि हुई है। अगर इस बढी हुई शक्ति को मनुष्य रचनात्मक कामो मे लगाता है तो ससार के लिए सुख-समृद्धि बढेगी। लेकिन अगर इस बढी हुई ताकत को ससार से झगडा करने मे लगाया और एक-दूसरे से घृणा उत्पन्न हुई तो भविष्य के लिए एक महान् खतरा है। यह खतरा क्यो है यह बताने की जरूरत नही है। क्योकि आज ससार का हर एक राजनीतिज्ञ इसी चिन्ता से परेशान है। लेकिन इस बात के लिए भी हमे दुख है कि अगर मनुष्य की दौलत बढती है तो उसमे अभिमान भी बढता है और अगर उसकी शक्ति बढती है तो उसके पाशविक विचार को भी उत्तेजना मिलती है। अगर बुद्धि बढती है तो मनुष्य उस बुद्धि को दूसरे का शोषण करने के काम मे लाता है। आज मनुष्य की दौलत, शक्ति और बुद्धि तीनो बढ रही है। इसका उपयोग अभिमान, क्रूरता या शोषण पर होगा कि नही, यही सवाल है। अभी तक जितने सकेत मिलते हैं उनसे यही मालूम पडता है कि मनुष्य ने अपनी बढी हुई शक्ति, दौलत और बुद्धि का उपयोग बाहरी तरीको से ही करने का फैसला किया है। जैसे-जैसे विज्ञान मे उन्नति होगी वैसे-वैसे मनुष्य की दौलत, शक्ति और बुद्धि भी बढेगी। इसमे कोई सदेह नही है। लेकिन इसका उपयोग अधिक अभिमान, क्रूरता और शोषण प्रवृत्ति मे हुआ तो यह बाहरी बात होगी और मनुष्य का अस्तित्व समाप्त होने का एक बहुत बडा खतरा पैदा हो जायेगा। इसलिए जहाँ पहले धर्मों को अपनी बुराइयो से खतरा था वहा आज सब धर्मों को एक साथ मनुष्य की बढती हुई शक्ति से खतरा हो गया है। हम यह नही चाहते कि यह शक्ति, दौलत एव बुद्धि घटे, इसके बढने मे ही हमारा फायदा है। फिर भी अगर हम इस शक्ति का उपयोग बाहरी तरीके से करते है तो हमारे लिए पहले जितना खतरा था उससे भी ज्यादा खतरा पैदा हो हो जायेगा। सभी धर्माचार्यों से यह निवेदन है कि वे मनुष्य-जाति का पथ-प्रदर्शन करें। अगर ऐसा करने मे हम सफल हुए तो इतिहास मे हम बहुत बडा काम कर पायेंगे और अगर असफल हुए तो हमारा जीवन विज्ञान के आगे नष्ट हो जायेगा तथा विज्ञान मनुष्य की नैतिक कमजोरियो के कारण नष्ट हो जाएगा। हम इतिहास के चौराहे पर खडे हुए है और हमें यह फैसला करना है कि हमे कुछ काम करना चाहिए या नही। इतिहास की धारा को सही दिशा मे ले जाने के लिए जो जरूरी है, उसे करे।

एशियाई धर्मों का मिलन

धर्म, मृत्यु पर आत्मा की विजय का सन्देशवाहक है। धर्मों ने भोग पर त्याग की, आसुरी शक्तियो पर दैवी शक्तियो की विजय करवाई है। धर्म का प्रासाद प्रेम और सहिष्णुता पर खडा है। आत्मसमर्पण धर्म की पहली शर्त है। धर्म ने मानव के विराट् अन्तस्तल मे सुप्त परमात्मा को जागृत किया है। धर्म ने आत्मा को परमात्मापन का आत्मविश्वास दिया है। और परमात्मा ने ही परमात्मा की अलौकिक ज्योति को निहार सकने का रहस्य उद्घाटित किया है। वट के बीज वट है, एक बीज के अगणित होने पर भी उनमे वही शक्ति है, शक्ति के विनिमय का सिद्धान्त अर्थात् शक्ति का विभाजन होने पर भी शक्ति है, वह अशक्ति नही हो सकती। ठीक इसलिये धर्म प्राणीमात्र की आत्मा को दिव्य प्रभुमय ही देखता है। 'अप्पा सो परमप्पा'' अर्थात् भगवान् महावीर की वाणी और आत्मा ही परमात्मा है, यह सब सुनहरा सिद्धान्त उसी परमधर्म के विश्वासी मानव को प्रदान किए गए है। प्रभुमय हुये बिना प्रभु का साक्षात्कार नही हो सकता है। यही सभी सन्तो, साधको, धार्मिको और मस्त फकीरो की अमरवाणी रही है जिससे धर्म जैसा अमृत इस मानव-लोक मे निरन्तर बहता रहता है। यही एक ऐसा भावात्मक धर्मों का सगम है, जहाँ ससार के सभी धर्म अपनी-अपनी एकता की गूज से प्रतिध्वनित हो रहे है।

धर्म चाहता है कि मानव की और मानवीय ससार की असुन्दरता धो दी जाय और मानव आसक्तिहीन हो सके, वाणी और विचार का अतिक्रमण कर, मौन की भाषा मे वाणी के नाद को सुन सके। याद रखिए, मौन ही आत्मा की भाषा का अविरोध प्रवाह है। उसका उद्गम प्रभु-साक्षात्कार से प्रकट होता है। प्रभु स्वरूप हुये बिना प्रभु को पाना असम्भव है। अपने स्वरूप मे लीन होने के पूर्व अपने स्वरूप का प्रेम होना आवश्यक है। अपने स्वरूप का प्रेम ही ईश्वर म प्रेम है। प्रभु-भक्ति ही जप-विकारो के शमन का एक उपाय है। सब दुर्वृत्तियो, अनैतिकताओ से अपने को बचाने के लिये सिवाय आनन्द भाव से प्रभु के प्रति

आत्मसमर्पण करने से श्रेष्ठ कोई मार्ग नहीं है। आत्मा ही सच्चा गुरु है। वही हमें प्रतिक्षण सत्य का साक्षात् शिक्षण देता है जिससे मानव अन्तर्मुखी हो सके, शान्ति प्राप्त कर सके, भेद से अभेद की ओर, अविद्या से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर प्रयाण कर सके। यही आत्मार्थी की, धर्मात्मा की, सर्वोच्च ध्येय-सिद्धि है जिसका शिक्षण सभी धर्मों ने किसी न किसी रूप में संसार को प्रदान किया है।

सभी धर्मों ने आत्मसमर्पण से अहम्भाव के नष्ट होने का विश्वास किया है। इसी से मानव का शोक और दुख, पीडा और व्यथा, सभी कुछ नष्ट हो जाती है। यही से आत्मानुभूति का पहला आस्वाद प्राप्त होता है। और आत्मानुभूति की शक्ति ही ससार की सभी गुप्त शक्तियों से बढ कर है। संकल्प, व्रत, जप, तप, नमाज, उपासना और प्रार्थना सब कर्म उसी शक्ति के जाग्रत करने के उपकरण मात्र हैं। उद्देश्य तो स्वरूप का बोध ही है, बिना स्वरूप के समझे "मैं" को पाये, हम अपना और ससार का किंचिन्मात्र भी उपकार नही कर सकते। इसलिये सयम, दया, परोपकार, सरलता, दमन, शाति तथा क्षमा आदि दैवी शक्तियो का प्रकटीकरण पहले अपने ही में करना पडता है। क्योंकि तुम्हारा ध्येय तुम्हारी विनम्रता मे ही छुपा हुआ है, तुम्हारा कल्याण तुम्हारे ही चरित्र-निर्माण मे निर्मित है, तुम्हारा उत्थान और पतन तुम्हारी ही भावनाओं और आचरणों पर अवलम्बित है। तुम्ही अपने आप के विधाता हो। शुभ करो, शुभ हो जायेगा। तुम्हे अशुभ से शुभ की ओर तथा शुभ से शुद्ध की ओर प्रयाण करना है। यही तुम्हारा पथ-क्रम है और इसी उदात्त वृत्ति को अपनाने के लिये सभी धर्मों का बलपूर्वक आग्रह है।

यह मै धम का अध्यात्म पक्ष कह गया हूँ। सभी धर्मों ने लोक-मगल, लोक-कल्याण और लोक-हित को ही अपना एकमात्र उद्देश्य घोषित किया है। आवश्यकता है कि हम अनेकान्त की दृष्टि से अखण्ड सत्य का दर्शन करें। शुद्ध दृष्टि द्वारा सत्य का साक्षात्कार करे। विश्व के धर्म केवल उन्ही के लिये उपादेय और ग्राह्य हो सकते हैं जिनकी दृष्टि सम्यक् है, विचार सम्यक् है, आचार सम्यक् है। मै विश्वास करता हूँ कि सभी धर्म सापेक्ष दृष्टि से सच्चे है, उन्हे झूठा नही कहा जा सकता है, हीन नही कहा जा सकता, वह किसी-न-किसी अपेक्षा से इसी परम सत्ता की ओर जाने के लिये आतुर है, जिसे धर्म अनेकान्त-आत्मक परम सत्य कहा जाता है। गाधी जी ने कहा था कि धर्मान्धता और दिव्यदर्शन दोनो अलग-अलग रूप है, उनमे कोई मेल नही है। धर्म की आत्मा को पहचानने वालो आत्मा को पहचानो, धर्म का साक्षात्कार करो।

मै धर्म के ब्रह्मस्वरूप मे एकता का दर्शन कर रहा हूँ, क्या सध्या, नमाज, आत्म-चिन्तन, उसी आत्मबोध को सिद्ध नही कर रहे है ? माला, तस्वीह और रोजारी एक ही चीज के नाम नही है।

अरहन्त, बुद्ध, रसूल, जरथुस्त्र, मसीह आदि शिक्षा देने वालो के नाम नही है क्या ? क्या सभी धर्म पुण्य तथा पाप के फल भोगने के स्थान को जन्नत, स्वर्ग तथा हैवन का नाम नही देते हैं ?

व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, धर्मार्थ दान, मनुष्य मात्र तथा समस्त प्राणियो के प्रति की गई दया, सुजनता और सौहार्द की सभी धर्म क्या प्रशंसा नही करते हैं ?

यह तो मैं एक स्थूल नियमो से तुलना कर रहा हूँ, नही तो सिवाय दृष्टि-भेद के ससार के सभी धर्मों मे आश्चर्यकारक एकता है। उस एकता को पाने के लिये समन्वय की बुद्धि, श्रद्धा का हृदय तथा प्रेम की आँखे चाहिये। धर्म के मानने वालो! विश्व के नागरिको! ससार के सभी धर्मों के प्रति उदार बनो, सहिष्णु बनो और उनके प्रति आदर रखो। तिरस्कार की भावनाओ को तिलाजलि दे दो। सहानुभूति के अमृत की वर्षा करो, तभी तुम धर्म का सौहार्द पा सकोगे।

अन्त मे विश्ववद्य महावीर के शब्दो मे "वस्थु सहावो धम्मो" कह कर मैं उस विराट् अखण्ड सत्य की ओर आपका ध्यान खीचना चाहता हूँ। अमर सन्तानो, सम्प्रदाय के स्थान पर स्वभाव को धर्म मानो और प्रेम का विस्तार करो। मैं आशा करता हूँ कि भारत भूमि पर ही सभी धर्मों का मिलन होगा जिससे समुचित विश्व को विलक्षण प्रेम का दिव्य सन्देश दिया जा सके।

●

कल्याण मार्ग धर्म-योग

ससार मे कल्याण के लिए धर्म से अच्छी नौका कोई नही है। वही कल्याणकारी है, उसकी महिमा न्यारी है। कल्याण के लिए धर्म ही एक अच्छा रास्ता है। आदमी को यह कभी भूलना नही चाहिए कि सत् जितना सच है उतना ही गम्भीर है तथा असत् भी सच ही के सहारे पर चलता है। ससार मे आजकल इतने धर्म हो गये है कि किसको समझा जाय कि यह धर्म सत्य है तथा यह धर्म असत्य है। यह पहचानना बहुत ही मुश्किल हो गया है। हस मे यह शक्ति होती है कि वह नीरक्षीर को अलग कर सकता है। लेकिन अगर आप मे भी यह शक्ति है वह ताकत है तो आप सत् तथा असत् और धर्म तथा अधर्म को पहचान सकते है। हीरे की परख कैसे हो सकती है। बात तो सही है, लेकिन सही होते हुए भी आधी सही है आधी झूठ। एक कहानी है कि एक आदमी ने कहा कि महाराज मैं तो खूब भाग पीता हूँ, तो महाराज ने कहा कि भाग पीना अच्छा नही है। आदमी बोल पडा कि महाराज आपने क्या कह दिया कि भाग पीना अच्छा नही है। अरे जिस बेटे ने भाग नही पी, वह बेटा नही बेटी है। जिस आदमी ने अपनी जिन्दगी मे भाग नही पीया वह इन्सान नही है। जिस प्रकार से कि जिस हलवा मे घी नही होता वह हलवा नही। उसने एक मसला कहा कि जिस बेटे ने भाग नही पी वह बेटा नही बेटी है तथा जिस हलवे मे घी नही वह हलवा नही मिट्टी है। ससार मे सच झूठ के सहारे चला करता है। धर्म-अधर्म सत्य और असत्य का विवेक किस प्रकार से कर सकते है। सन् १९३५ की बात है, इस बीच बहुत से धर्म पैदा हुए। जैसे-जैसे प्रोडक्शन बढता गया वैसे-वैसे धर्म भी बढते गये। ये जो नये धर्म बनते है इसमे पुरातन अर्थात् पुरानी बातें नही रहती है लेकिन कभी वे भी पुरानी ही हो जाती हैं। मनुष्य का यही भेद है कि नया पुराना किसे कहते है? बूढा किसे कहते हैं जो कभी बच्चा होता है, जवानी किसे कहते है, जो कभी जाकर नही आती। राधा स्वामी सम्प्रदाय के विषय मे मैं आपसे कुछ कह रहा था। आत्मा को पहचानने के लिए आत्मा को साधने के

लिए योग को बहुत बडा सिद्धात माना गया है। यह जो बादाम के ऊपर का छिलका होता है यह तो धर्म का व्यवहार है और जो अन्दर का छिपा हुआ होता है, वह योग है। सब धर्मों का सार योग मे भरा पडा है। भगवान् ने कहा है कि दर असल अन्दर मे योग की सिद्धि जब तक न हो जाय तब तक कल्याण नही होता। मूल चीज तो योग ही है। योग से ही आदमी का विकास होता है, आदमी अपना कल्याण कर सकता है। जिस प्रकार दुनिया के लोगो की नीद एक-सी होती है परन्तु जागने मे अन्तर होता है। कोई ज्यादा देर तक सोता है, कोई कम देर तक सोता है, कोई शिथिल होता है, कोई फुर्तीला होता है। उसी प्रकार से दुनिया मे तमाम धर्म है। परन्तु सब धर्मों का मूल अमृत योग है। यही बात है कि बहुत से धर्म प्रवर्तक साधु, सन्यासी, गृहस्थ आदि के रूप मे हुए हैं। यहाँ तक कि बहुत से बाल-ब्रह्मचारी के रूप मे भी हुए हैं। हमारे चौबीस तीर्थंकरो मे कुछ ऐसे थे कि जिनके सैंकडो बाल बच्चे थे चक्रवर्ती थे। जिसकी योग वृत्तियाँ केन्द्रित हो गई हैं वह माया के बीच मे जबान की तरह, पानी मे कमल की तरह रहेगा। वह दुनिया मे चाहे जहाँ रहे, चिडिया की तरह रहेगा। उस पर ससार की किसी वस्तु का प्रभाव नही पडेगा। भगवान् कहते है कि यदि साधु आख बद करके नही चलता तो वह माया के फेर मे पड जाता है। जैसे नाक खुली रहेगी तो उससे सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनो आयेगी। कान खुला रहेगा तो उससे अच्छी तथा खराब दोनो बाते सुनने को मिलेगी। पति-पत्नी के प्रेम की भी बातें सुनने को मिलेंगी तथा इसी प्रकार दुनिया की तमाम बाते हमे सुनने को मिलेगी। भगवान् कहते है कि जो सिद्ध विवेक तथा योग के द्वारा चलता है उसके अन्दर दुनिया की बुराइयाँ कभी नही आ सकती। राधा स्वामी सम्प्रदाय किस प्रकार बना। राधा स्वामी ये बहुत बडे अफसर थे। वे कोई ऐसी पुस्तक पढे जिसके अध्ययन से उन्हे लगा कि श्रुत योग बहुत बड़ा है। अब यह प्रश्न आता है कि श्रुत योग क्या है। श्रुत योग यह आँखो से किया जाता है। आँखो को मूद कर बैठ जाओ। आँखो मे दर्द होने लगे, धडकन आने लगे, कोई परवाह न करो। लगातार दो-तीन दिन करते रहो। ऐसे धीरे-धीरे जब आप लगातार कई महीने तक करते रहेगे तो आपकी यह एक आदत हो जायेगी। आँखो मे बिजली के समाज तेज आ जायेगा। जिस प्रकार कि स्विच लगाने से बत्ती जलने लगती है उसी प्रकार आग्वो मे प्रकाश आ जायेगा। आपके सामने मोटर जा रही है, गाडी जा रही है, सर्प जा रहा है, यदि आपकी इच्छा होती है कि हम इसे रोक ले तो वह अपने आप ही रुक जायेगा। आँखें सूर्य की शक्ति से बनी होती है। लेकिन इसके करने से जो बुराई होती है वह यह है कि आख खराब हो जाने से वह किसी प्रकार की भी चिकित्सा से अच्छी नही हो सकती। जो आदमी श्रुत योग को सिद्ध कर लेता है, आसमान जोकि ऊपर दिखाई दे रहा है वह साक्षात् सामने दिखाई देने लगेगा। जब तक आप आसन ठीक ढग से नही लगाते है तब तक सिद्धि नही प्राप्त हो सकती है। आप आसन को पहले ठीक ढग से लगाइए तथा उसके बाद चितन कीजिए तथा मन की वृत्तियो को शुद्ध कीजिए। इस पर आपको जो आनन्द प्राप्त होगा वह आसीम है। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परम हस से कहते हैं कि भगवान् है कि नही। रामकृष्ण परमहंस ने उनके सिर पर हाथ रखा और कहा कि आख बद करो। आख बद करने पर उनको एक प्रकाश दिखाई पडा तथा एक दिव्य पुरुष उनके मन को दिखलाई पडा। इसी प्रकार अगर

आसन की सिद्धि मनुष्य को प्राप्त हो जाती है तो आसन की सिद्धि से मनुष्य महान् बन सकता है।

बहुत से ऐसे साधु होते हैं जोकि कपड़े बदलकर बैठ जाते हैं और धीरे-धीरे श्वास लेते हैं तथा अपने को महान् कहते हैं, वे कहते हैं कि मंत्र लो। मंत्र लेने से भगवान् की प्राप्ति होती है। सब ढोंग है। महात्मा वह होता है जो चीजें किसी को प्राप्त नहीं होती है वह उसे प्राप्त कर लेता है। इसका मतलब यह है कि जो चीजें गृहस्थी को नही प्राप्त होती हैं वे प्राप्त कर लेता है तो वह सच्चा महात्मा कहा जा सकता है। यदि वह नही प्राप्त कर पाता तो चाहे जैसा आचार्य हो लेकिन वह सच्चा महात्मा कभी नही कहा जा सकता। बिना इसके कोई फायदा नही तथा कोई कल्याण भी नही हो सकता। कल्पना कीजिए कि आँख के ऊपर का जगत् आपका नही है तथा नीचे का भी आपका नहीं है। जब यह स्थिति हो जाये तो एक काले बिन्दु की कल्पना कीजिये। बहुत ज्यादा जोर मत दीजिए, धीरे कीजिए। मगर एक भी इच्छा, कल्पना यदि रही तो सब नष्ट हो जायेगा। एक भी सिद्धि होने को नही है। यह सब दिल की कमजोरिया हैं। जगत् तुम्हारे अधीन नही है। पर धीरे धीरे वह अधीन हो सकता है। मन को ट्राई करने मे भी कुछ समय लगता—है जैसे यदि मोटर सीखना है तो सीखते-सीखते भी कुछ दिन लगता है। उसी प्रकार मन को ट्राई करने मे कुछ समय लगता है। जब आपका मन पक्का हो जायेगा तो आप सगीत सुनना चाहेगे तो आपको सगीत सुनाई देगा। अथवा आपकी जो कुछ इच्छा, मनोकामना होगी, वह सफल होकर ही रहेगी। यह श्रुत योग है। मनुष्य भावना का भण्डार है। जब उसको एक रास्ता मिल जाता है तो वह समझने लगता है कि यही रास्ता सबसे अच्छा है, दूसरा रास्ता रास्ता ही नही है। आनन्द उसी आदमी को प्राप्त हो सकता है जो काम, क्रोध, मोह, माया आदि को त्याग दे तथा व्यभिचारो से दूर रहे। एक आदमी एक महात्मा के पास गया और कहा कि महाराज हमारे अन्दर तमाम व्यभिचार भरे पड़े है। महात्मा ने कहा उनको और बढाओ। उन्होने उसको एक ऐसा आसन बता दिया जिससे कि उसके सब व्यभिचारो का लोप हो गया। कुछ आदमी ऐसे होते हैं जिनको कि लड़ने मे आनन्द आता है, कुछ ऐसे होते है, जिनको व्यापार मे आनन्द आता है। आप अपने मन को जिस तरफ ले जाये उसी तरफ आनन्द आने लगता है इसके सिवाय तो कोई दूसरी स्थिति नही है। तमाम दुनिया का सार योग है।

योग के अन्दर जो श्रुत योग है वह ही सबसे बडा एव महान् है। सामायिक करने से मनुष्य के दस हजार वर्षों के पापो का नाश हो जाता है। यही योग सिद्धि है। जब आत्मा परमात्मा से मिल जाती है तो आत्मा का उद्धार हो जाता है। ऐसे ही नमाज, प्रार्थना से से भी आदमी का उद्धार हो जाता है। कहा है —

वफा जिससे किया, बेवफा हो गया।
जिसे बुत बनाया, वह खुदा हो गया।

धर्म का मतलब है इन्सान को इन्सान बनाओ, मनुष्य को मनुष्य बनाओ। जब तक मनुष्य के अन्दर यह भावना नही होती है तब तक मनुष्य अपने जीवन का कल्याण नहीं कर सकता है। राधा स्वामी सम्प्रदाय योग पर विश्वास करता है। मन की वृत्तियो को वश मे

करने से ही आनन्द प्राप्त होता है। भूल उन्होंने भी की। जिसने कुछ पाया और समझ लिया कि यही सबसे बढकर है। अगर सारे व्यापारी एक ही व्यापार करने लगें तो क्या होगा ? सबके अलग-अलग तरीके होते हैं, ढग होते हैं। कोई कपडे का व्यापार करता है, कोई अनाज का व्यापार। अगर ये लोग कपडे तथा अनाज का व्यापार न करें तो हमको कैसे कपडा तथा अनाज मिल सकेगा ? जो जिस चीज का व्यापार करता है वह समझता है कि इसी मे सबसे ज्यादा फायदा है। और कोई व्यापार व्यापार ही नही है। कहा है गढ तो चित्तौड़गढ और सब गढैया। कुछ मनुष्य कहते है कि हम जो कुछ कहते हैं, हमारे जो कुछ ग्रन्थ है, वही सबसे श्रेष्ठ एव महान् हैं। बेईमानी ईमानदारी के रूप मे, झूठ सत्य के कन्धे पर, अधर्म धर्म की चादर पहन कर चलता है। विवेक बुद्धि के बिना इसका पता नही लगाया जा सकता। इसलिये प्रत्येक आदमी को चाहिये कि वह प्रकाश की ओर चले। अधर्म को छोडकर धर्म का मार्ग अपनाए।

●

धार्मिक सम्प्रदायों में परम-ऐक्य

धर्म-समन्वय, धर्म-सहिष्णुभाव एव विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो मे परम-ऐक्य का दर्शन भारत मे प्रारम्भ से ही विकसित होता आया है। 'एक सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'— यह ऋग्वेद के उन ऋषियो की वाणी है— जो नाम और रूप के नाना प्रकार के भेदो मे एक ही सत् का दर्शन कर रहे है। मुझे गौरव है कि मैं ससार के उन प्राचीनतम धर्मो मे से ऐसे धर्म पर विश्वास कर रहा हूँ कि जिस धर्म ने अपने दार्शनिक आधार को अनेकान्तवाद का नाम दिया है। और अहिंसा जैसा उदार सिद्धान्त जिसमे सब जीवो का हित और अनेकान्त जैसे अखण्ड सत्य का प्रतिपादक सिद्धान्त ही जिसके मूलाधार है। जिसकी पहली शर्त यह है कि ससार के सब धर्मो मे, सब विचारधाराओ मे और सब प्रकार के साम्प्रदायिक दृष्टिकोणो मे सापेक्षिक सत्य का दर्शन जो नही कर सकता— वह उस धर्म को अपना ही नही सकता और उस धर्म का नाम जैन धर्म है। धर्म-सहिष्णुता का भाव ही जैन धर्म की हमारे लिये विरासत है।

यह वह देश है जहाँ ऋषियो की वाणी मुखरित हुई। योगिराज कृष्ण का गीता-सदेश, राम का कर्तव्य, तीर्थंकर महावीर का त्याग और बुद्ध की करुणा, अनन्त-अनन्त राशि मे प्रभावित हुई। पूर्व के तीर्थंकरो ने, दक्षिण के आचार्यों ने और उत्तर के सतो ने इस देश की सस्कृति को भूमा बनाया है।

यद्यपि आज सगठन का युग है किन्तु अर्थ एव सत्ता व व्यापार के आधार पर खडे किये गए सगठन—मनुष्य जाति के लिए लाभदायक सिद्ध नही हो रहे हैं। सयुक्तराष्ट्र सघ अन्तर्राष्ट्रीय सगठन ससार की शान्ति का पूर्ण रूप से आश्वासन नही दे पा रहा और पचशील तथा बाडुग सम्मेलन आज पारस्परिक अविश्वास को नही धो पा रहे— उसका कारण सह-अस्तित्व एव सह-जीवन की भावनाओ को इन सगठनो मे स्थान तो दिया गया किन्तु पीछे जिस आत्मनिष्ठा की एव अभयवृत्ति की आवश्यकता होती है उसको महत्त्व न

दिया जा सका। यही कारण है कि धर्म की इस समता, सह अस्तित्व आदि सिद्धान्तों को राजनीतिक सगठनो ने धर्म से उधार तो लिया किन्तु इनको आत्मनिष्ठ न बना सके। वर्ग-सघर्ष, प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिद्वेष को यह सगठन मिटा न सके।

इसीलिये धर्म के आधार पर एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की आवश्यकता हम महसूस करते हैं—जिसके द्वारा मानव-समाज के आपसी सबधो को आत्मनिष्ठ बनाया जा सके। राजनैतिक स्तर पर यूनेस्को जिस सास्कृतिक भाव की सृष्टि कर रहा है—इस की पूर्ति इस धार्मिक सगठन से की जा सके। हमारा विश्वास है कि अब वह समय आ गया है जब धर्म के मानने वाले लोग अनुन्नत राष्ट्रो की सहायता के लिये विश्व-मानस तैयार करें, पारस्परिक सघर्षों को आत्मिक विस्तार से धो दे। भाषा व साम्प्रदायिक सघर्षों को मिटाने के लिये कटिबद्ध हो जायें और तमाम पराधीन राष्ट्रो को स्वाधीन कराने मे सहायक बने, ऐटम-स्पर्धा को नियत्रित करने के लिये विश्व-व्यापी अभियान चलायें, समाज के पुनर्निर्माण मे नैतिक सिद्धान्तो को आत्मनिष्ठा से स्थापित करें—जिससे मानव-समाज की बुनियादी मानवीय समस्या का समाधान हो सके और जीवन के चिरन्तन सत्य को मनुष्य पा सके। जगत् की समस्याओ को राजनीतिक स्तर से हल करने के बहुत प्रयास हो चुके हैं, अब यह समय आ गया है कि जगत् की सब समस्याओ को धार्मिक और आध्यात्मिक कसौटियो मे कसा जाये और उनका समाधान किया जाये। इसके लिये ससार के विभिन्न धर्मों के एक सघ की बहुत बडी आवश्यकता है।

दु ख होता है कि जब आज का सुधारवादी किसी धर्म के सम्बन्ध मे बडी घृणा से यह कहता है कि—मैं धर्म को कुछ नही मानता, शास्त्र और तत्त्वज्ञान को स्वीकार नही करता, ऐसा लगता है कि उसकी बौद्धिक अस्मिता इतनी रुग्ण हो चुकी है कि धर्म जैसे अमृत को, अमृत मानने को ही तैयार नही होता। इससे अधिक आज के सुधारवादी की विसगति क्या हो सकती है ?

आज धार्मिको के सामने जो सबमे बडी समस्या है वह धार्मिक एकता की तो है ही, किन्तु उससे बडी बात धार्मिक ज्ञान को सुरक्षित करने की भी है। जिस तरह ससार मे कुछ महत्त्वाकाक्षी लोग धर्म को कट्टरता का रूप देकर उसे असुन्दर बनाते है और अशुभ की ओर ढकेल देते हैं—उसके निराकरण करने की भी समस्या हमारे सामने है। आज हम अपने चारो ओर जिस अधकार को देख रहे हैं-- उसे दूर करने का उपाय धर्म और विज्ञान और विज्ञान को धर्म का रूप नही दे सकेंगे, तब तक हमारी समस्याए किसी भी तरह सुलझ नही सकती।

●

बम्बई मे आयोजित धर्मसम्मेलन के अवसर पर बम्बई राज्य के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री मोरारजी देसाई एव अन्य धर्माचार्यगण । सन् १९५४

उज्जैन में आयोजित सर्वधर्मसम्मेलन के अवसर पर (बायें) से पूज्य श्री किशनलाल जी म० मालवकेसरी श्री सौभाग्यमल जी म० एवं सम्मेलन के सूत्रधार मुनि श्री सुशील कुमार जी म० । सन् १९५५
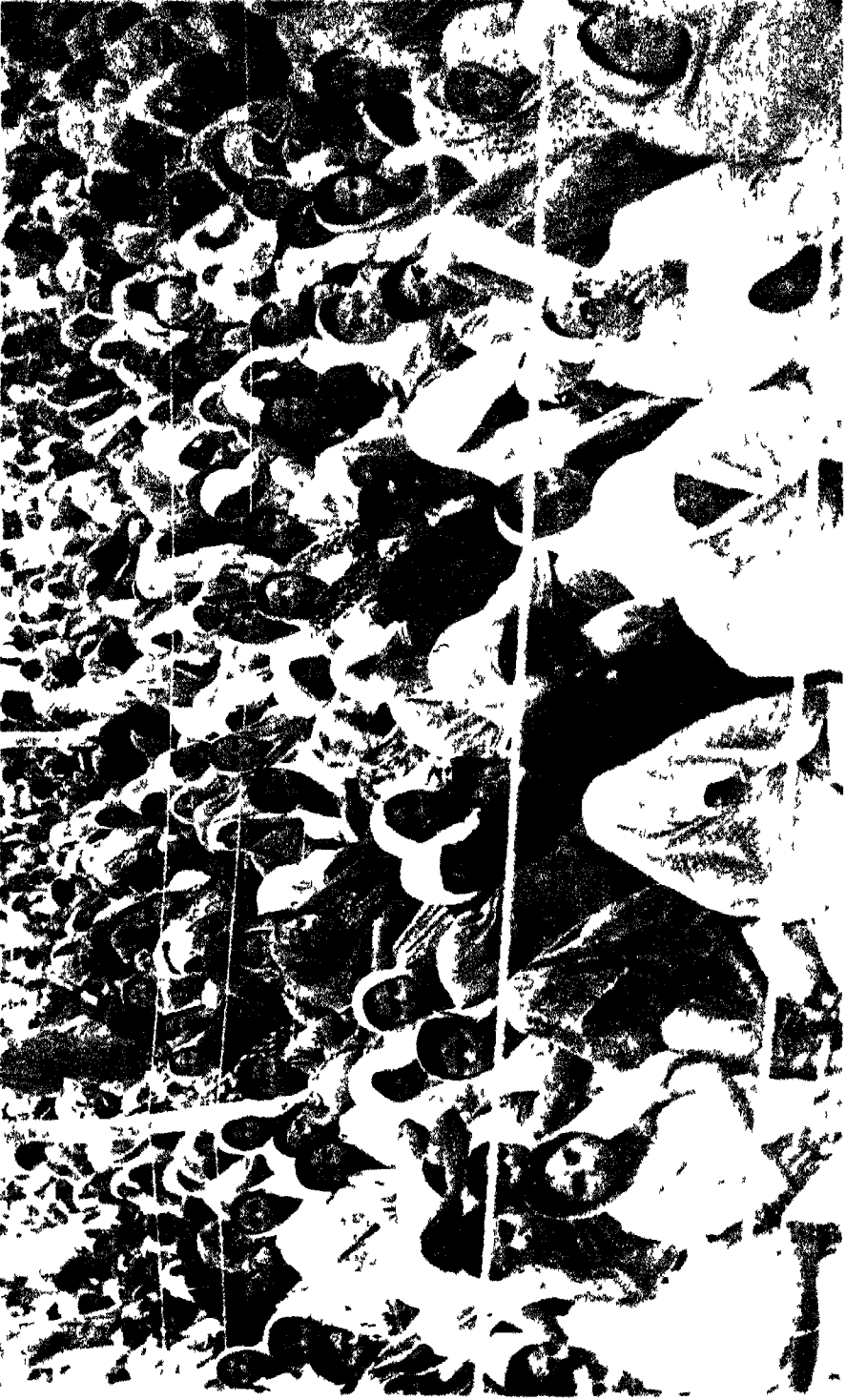
उज्जैन महिला-सम्मेलन मे सम्मिलित महिलाये जो मुनिजी का ओजस्वी प्रवचन तन्मय होकर सुन रही हैं। सन् १९५५

राष्ट्रपति भवन में डा० राजेन्द्र प्रसाद श्री सुभाग मुनिजी एवं मुनिजी । सन् १९५७

तत्कालीन शिक्षामन्त्री मौलाना अबुल कलाम आजाद को विश्वधर्म सम्मेलन की गतिविधियों से अवगत कराते हुए मुनिजी

प्रथम विश्वधर्म सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू, तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और स्वागताध्यक्ष साहू शान्तिप्रसाद जैन के बीच मुनिजी

प्रथम विश्वधर्म सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर (बायें से) मुनिजी, पण्डित नेहरू (माइक पर) और तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

दिल्ली में आयोजित प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर एकत्र अपार जनसमूह

लालकिले म विश्व धम सम्मेलन के अवसर पर बोलते हुए अलेक्जेण्डर मार्की मुनिजी तथा अन्य प्रतिनिधि

विभिन्न धर्म प्रतिनिधियों के बीच मुनिजी

मुनिजी तत्कालीन गृहमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत के साथ बातचीत करते हुए
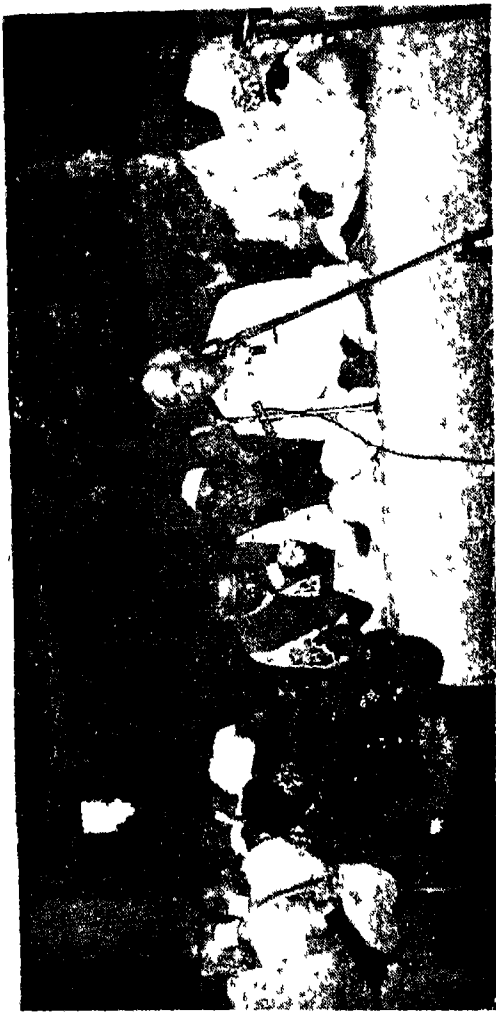
प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक रिचर्ड ग्रेग मुनिजी के सान्निध्य में

विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधि

(बायें से) श्री अनन्तशयनम आयगार सेठ जुगलकिशोर बिरला [illegible] (मध्य में) सन्त कृपाल सिंह जी
मुनिजी एवं श्री सुभाग मुनि जी

आकप्रास्ट र्मिस्तकी के साथ मुनिजा

राष्ट्रपति भवन म आयोजित बठक मे (बाये स) मुनि श्री छाटे लाल जी म० मुनि श्री त्रिलाक चन्द जी म०, मुनि श्री शुक्ल चन्द जी म०, मुनि जी सन्त तुकडोजी काका कालेलकर, श्री उच्छरग नवल भाई ढेबर आदि

विश्वधर्म सम्मेलन की विषय निर्वाचन समिति की बैठक के अवसर पर मुनिजी पोलैण्ड, हंगरी और कजाकिस्तान के सर्वोच्च धर्म-नेता जियाउद्दीन बाबा खानोव, आर्कप्रीस्ट ह्मितस्की के साथ
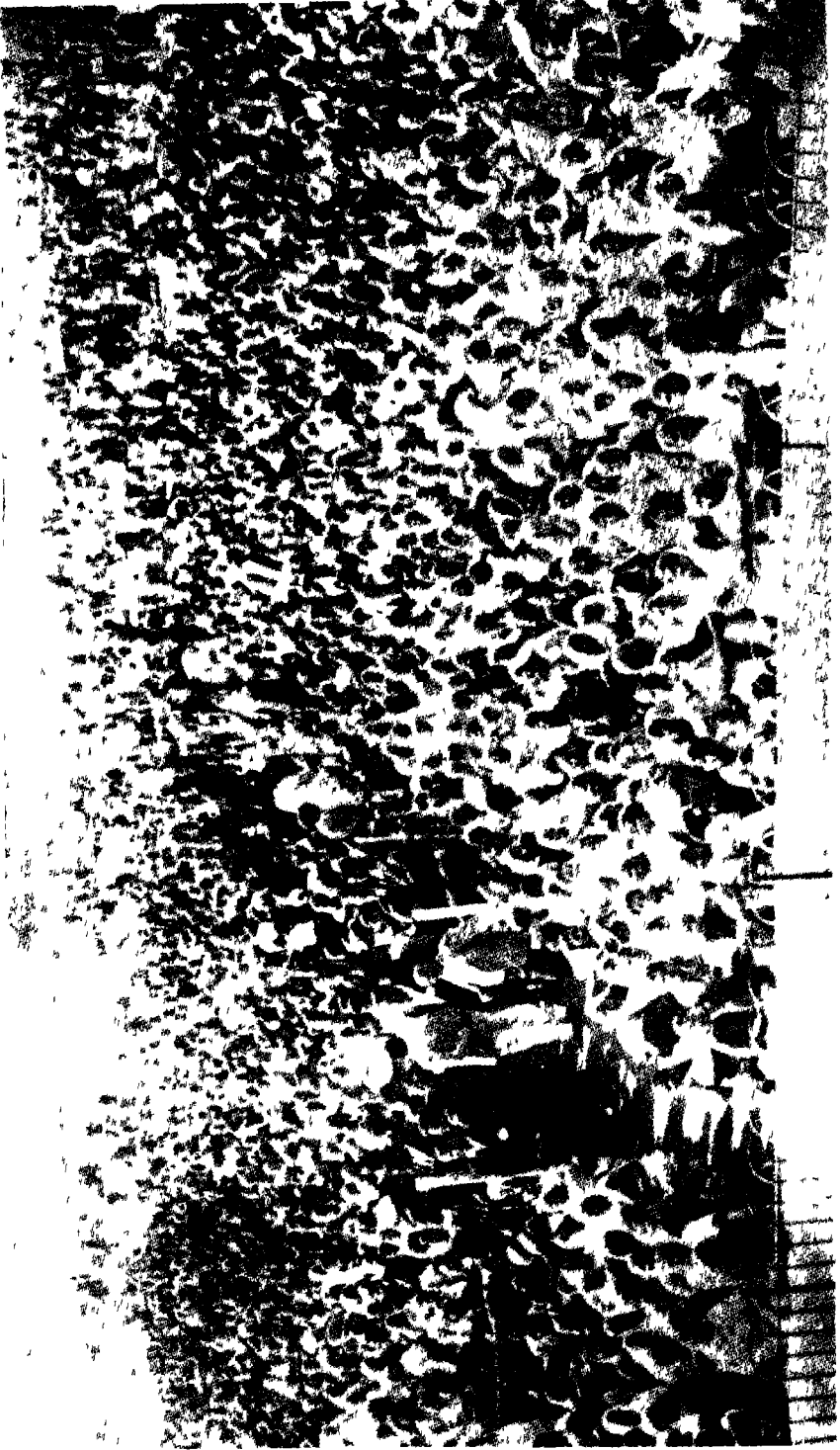
रामलीला मैदान मे विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर एकत्र जनसमूह
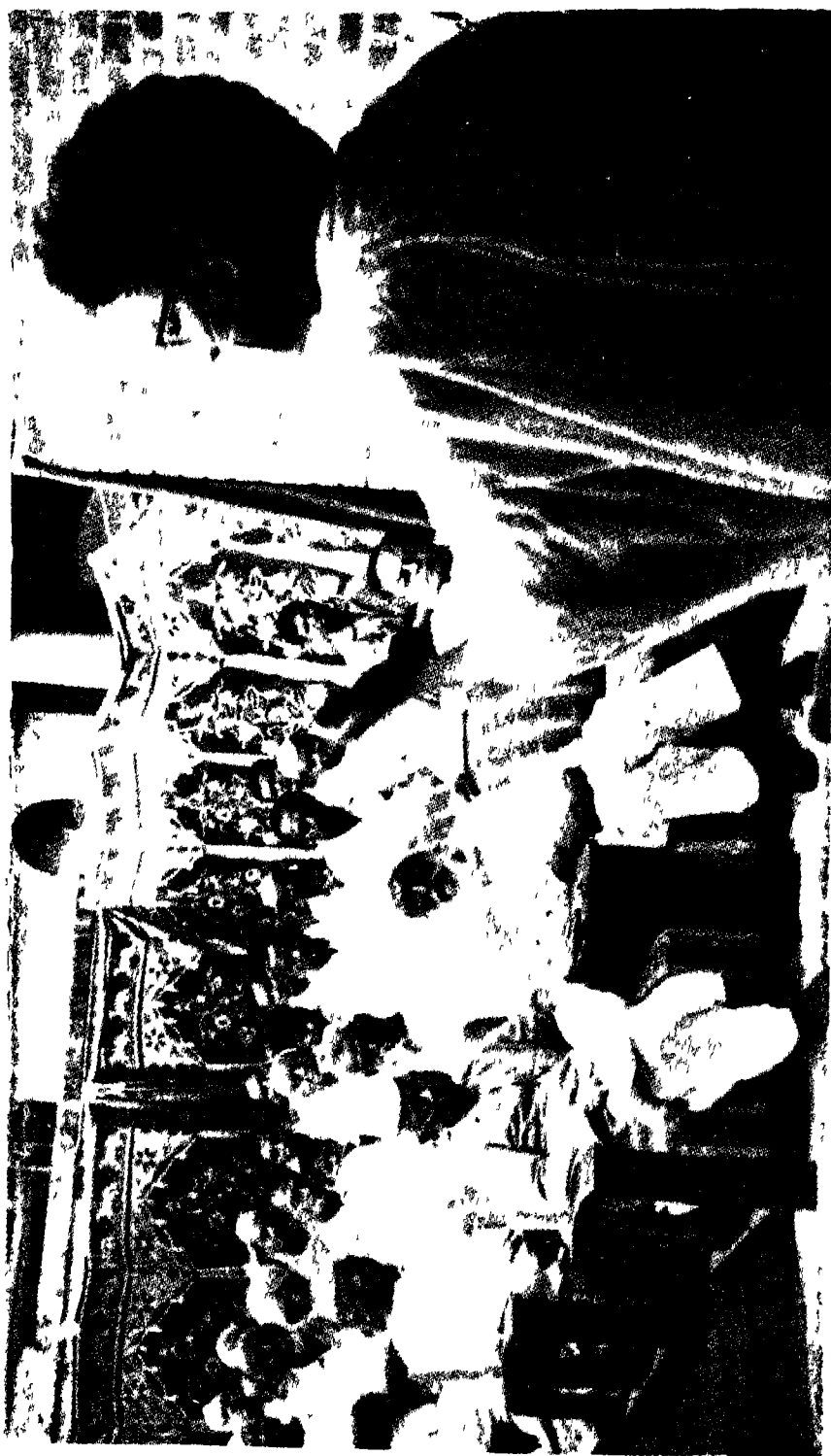
पत्रकार-परिषद् को सम्बोधित करते हुए मुनि जी (बैठे हुए) कांग्रेस महामन्त्री श्री तखतमल जैन, केन्द्रीय मन्त्रीगण एव पत्रकार

आन्ध्र धर्म सम्मेलन शाखा के सम्बन्ध मे विचार गोष्ठी के अवसर पर आन्ध्र के मुख्यमन्त्री श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी, मौलाना पीर अजमेर शरीफ मुनिजी श्री सुभाग मुनिजी एव श्री शान्तिप्रिय जी

राष्ट्रपति भवन में विश्वधर्म-सम्मेलन का परिचय देते हुए मुनिजी (बैठे हुए बायें से) मुनि शान्तिप्रिय जी, मुनि श्री शुक्लचन्द जी म०, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सन्त तुकड़ा जी, श्री हरिभाऊ उपाध्याय आदि

कलकत्ता मे आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर (दाये से) स्वामी सहजानन्द (केरल) श्री रमेश अग्रवाल, मुनिजी, सन्त कृपाल सिह
[illegible] श्री सावलदास वर्मा उडिया बाबा (उडीसा) और समरसेकर (श्रीलंका)
(अग्रिम पंक्ति मे दाये से) कामगार पारसी (ईरान), सेठ आनन्दराज सुराणा, अब्दुल हुसेन-अ-बातकाविर इस्माइल मुल्लाजी ।

अहिंसा भवन का शिलान्यास करते हुए नेहरू जी

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के साथ विचार-विनमय करते हुए मुनिजी

अहिंसा भवन के शिलान्यास के अवसर पर (बाये से) श्री सुभाग मुनि जी मुनि जी (प्रार्थनालीन) नेहरू जी, सेठ गोविन्द दास, काका कालेलकर डा० दौलत सिंह कोठारी आदि

अहिंसा भवन के शिलान्यास के अवसर पर (बायें से) श्री सुशील मुनिजी, मुनिजी पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सेठ गोविन्ददास और काका कालेलकर

तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् आयगार के साथ विचार-विनिमय करते हुए मुनि जी साथ मे हैं, सेठ आनन्दराज सुराणा एव श्री अचलसिह
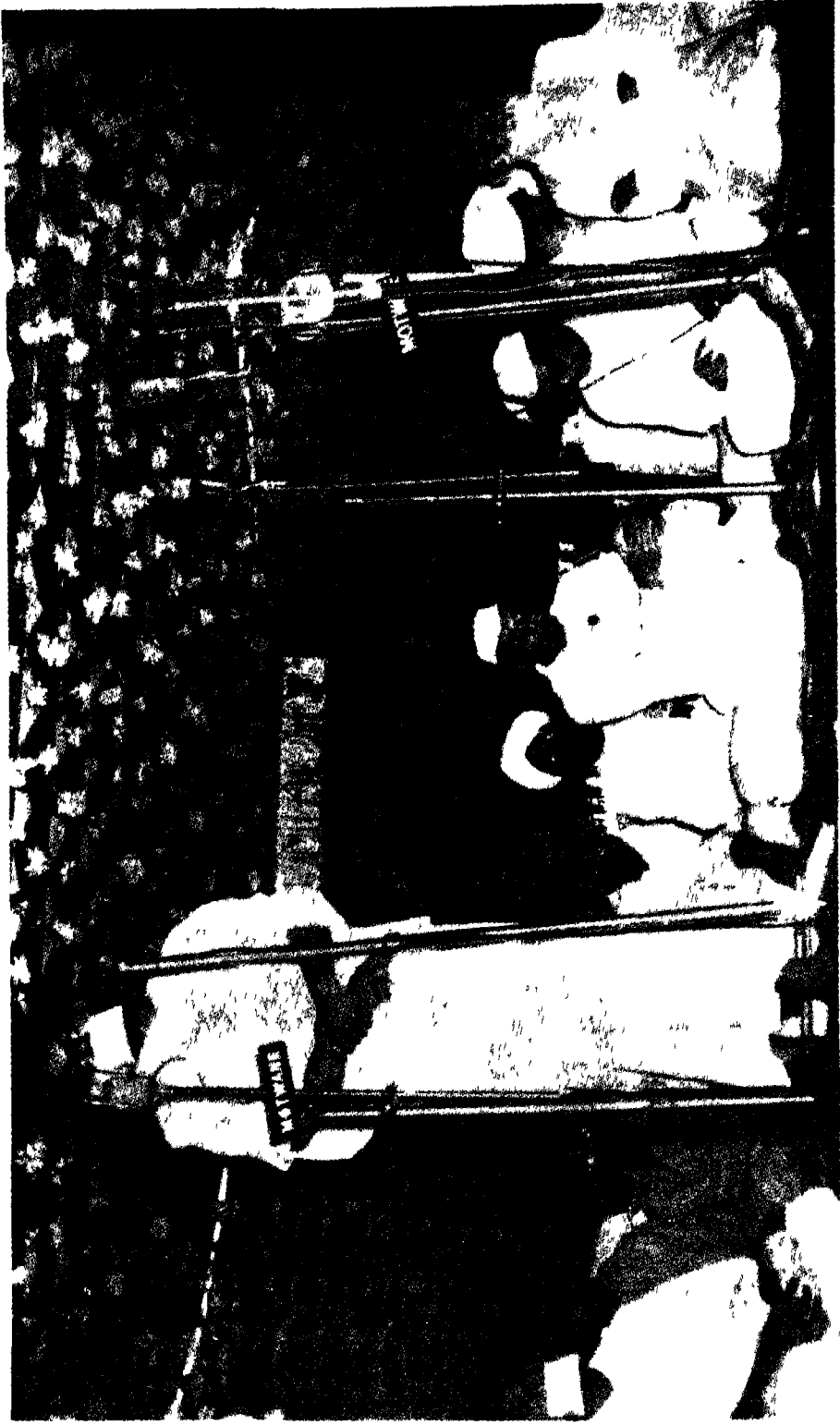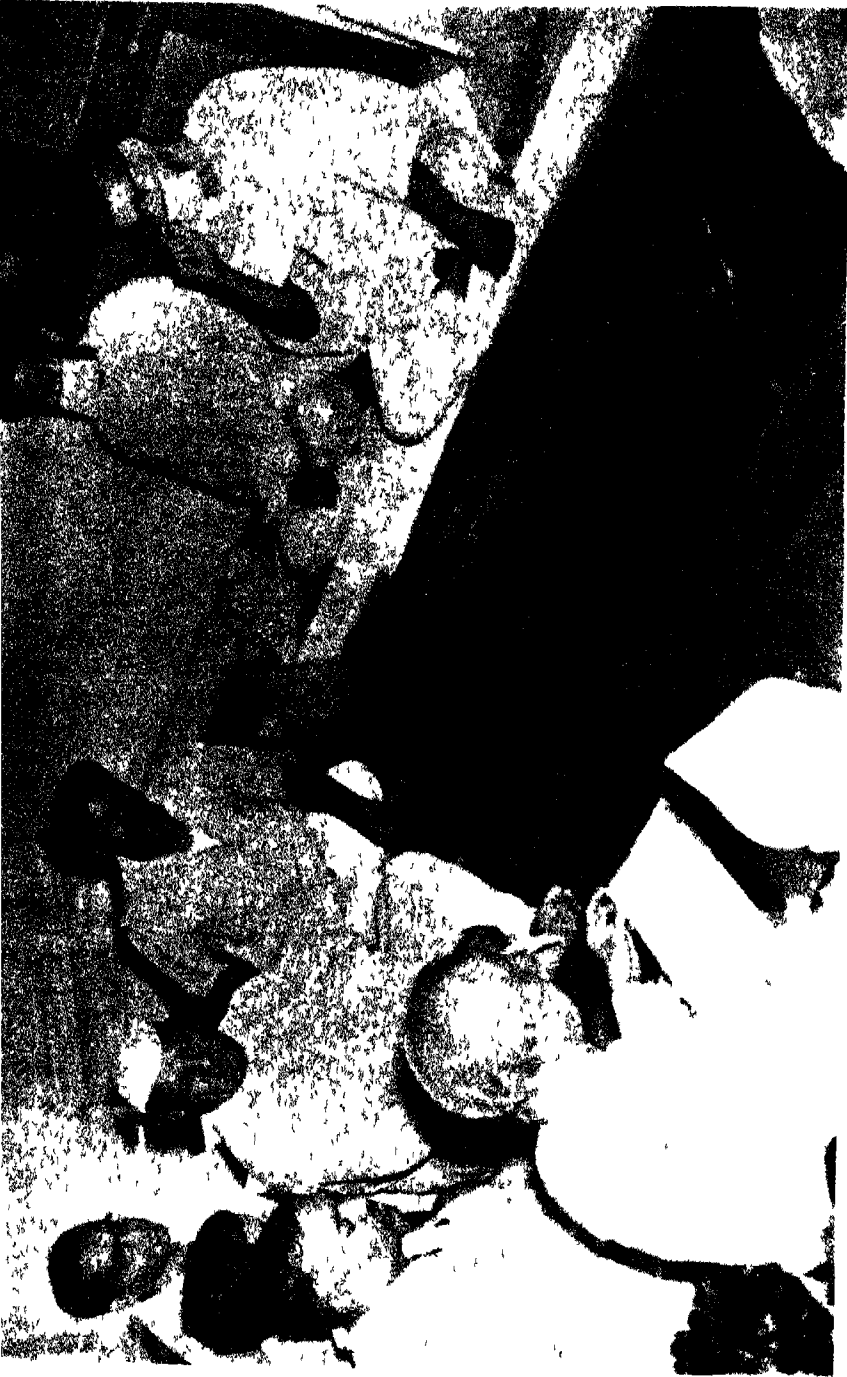
तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् से विश्वधर्म सम्मेलन की रूपरेखा पर बातचीत करते हुए मुनिजी
साथ में हैं श्री सुभाग मुनि जी

अहिंसा भवन के शिलान्यास के समय पण्डित जवाहरलाल नेहरू से विचार-विनिमय करते हुए मुनि जी

अहिंसा भवन के शिलान्यास के अवसर पर (बायें से) मुनिश्री डा० बुद्धचन्द और संसद सदस्य सेठ गोविन्ददास.

महावीर जयन्ती के अवसर पर (बाय से) तत्कालीन प्रतिरक्षामंत्री श्री वी० के० कृष्ण मेनन, मुनि जी, श्री सुभाग मुनि जी आदि

पजाब के तत्कालीन मुख्यमत्री सरदार प्रताप सिंह करो से रंगाबसी जल हुक्रक के सम्बन्ध मे बातचीन करते हुए मुनि जी

मत ममागम मे मुनि जी धर्म-प्रवचन करते हुए, बैठे हुए डा० दौलत सिह कोठारी

धर्म नेताओं से मिलन (बायें से) महामण्डलेश्वर श्री भगानन्द जी म०, मेजर जनरल मजहरी (ईरान), मुनिजी, मुनि हरिमिलापी जी आदि

गोरक्षा आन्दोलन के जुलूस के संयोजक मुनिजी एवं करपात्रीजी जगद्गुरु शंकराचार्य तथा अन्य धर्म नेतागण

श्री जैनेन्द्र कुमार के साथ दार्शनिक चर्चा में लीन मुनि जी
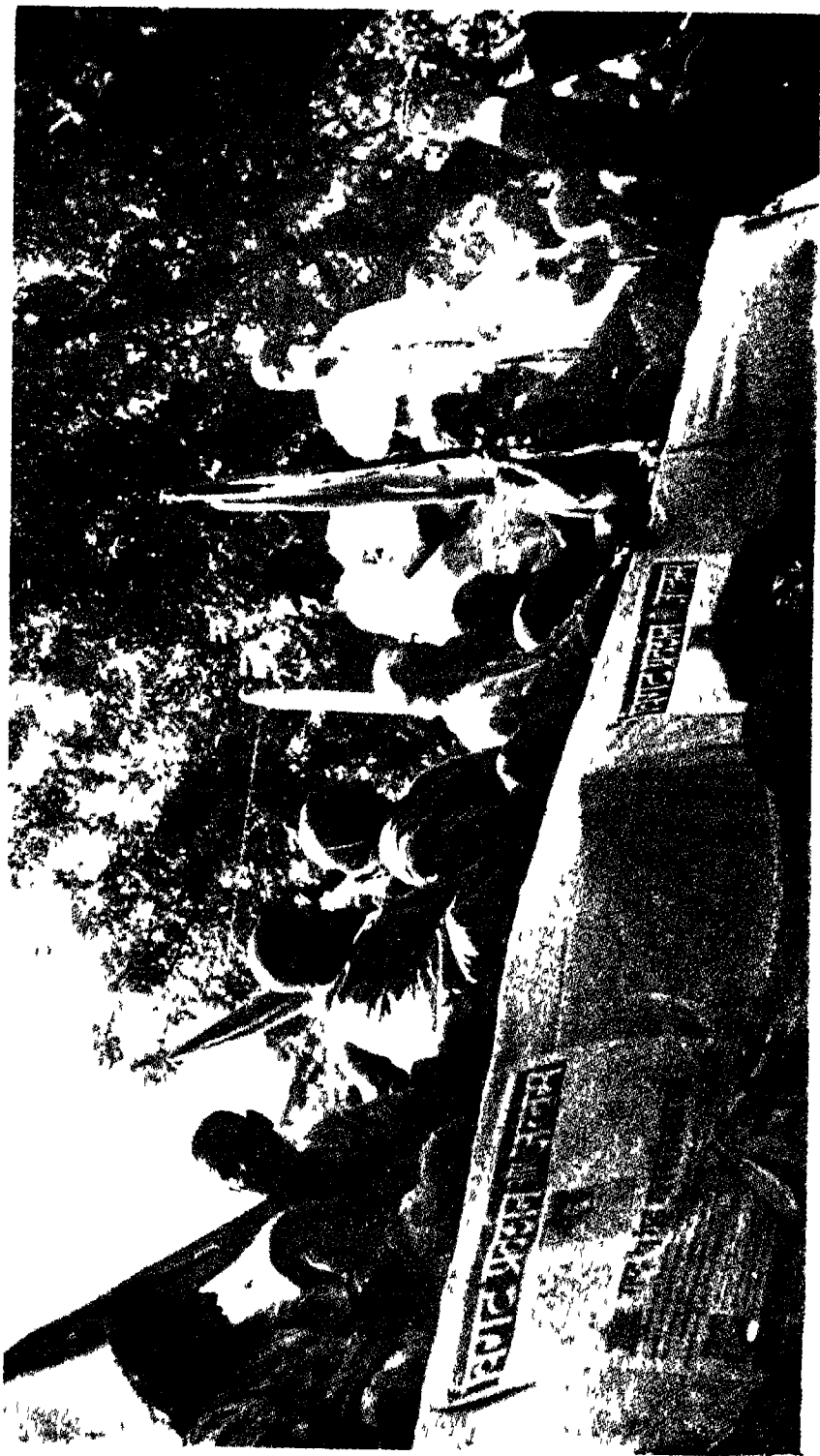
पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रताप सिंह कैरों मुनि जी का चरण-स्पर्श करते हुए

स्वर्गीय परम तपस्वी मुनिश्री रूपचन्द जी म० के १०५ वें दीक्षा दिवस के अवसर पर मुनिजी श्री सुभाग मुनिजी
तत्कालीन शिक्षामन्त्री डा० कालूराम श्रीमाली एवं सेठ गोविन्द दास
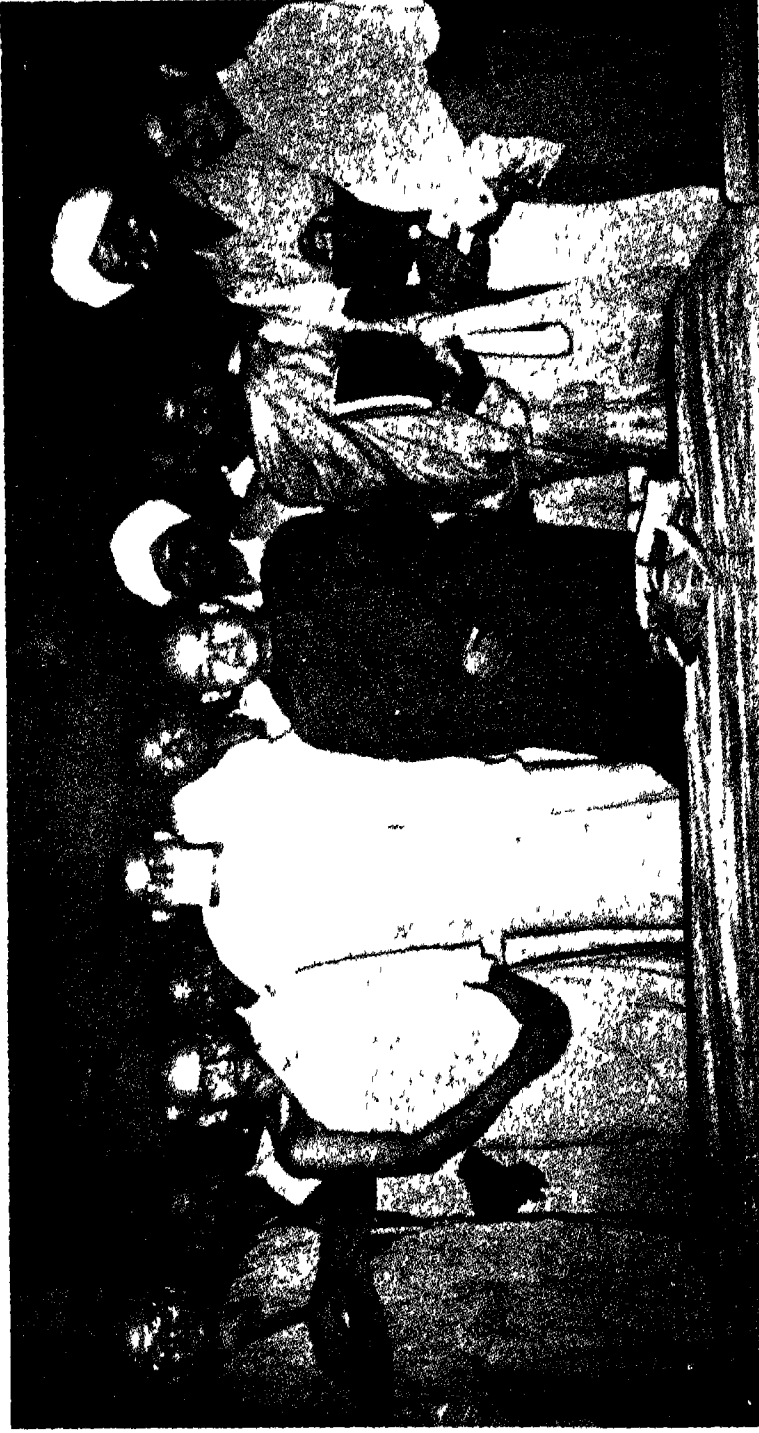
धर्माचार्यों के बीच (बाये से) स्वामी भास्करानन्द महेन्द्र मिश्र मुनि जी बैंग महाराज थाईलैण्ड वियतनाम एवं बंगलादेश के बौद्ध भिक्षुगण तथा
महन्त शुकदेव नाथ

अकाली नेता मास्टर तारा सिंह के साथ विचार-विमर्श करते हुए मुनि जी

विभिन्न देशो के सन्तो के साथ (दाये से) कुशिक बकुला, दलाई लामा के बडे भाई, पण्डित सुन्दर लाल सरदार मान सिह, मुनि जी एव श्री सुभाग मुनिजी

बिरला मन्दिर में आयोजित अपने अभिनन्दन के अवसर पर मुनि श्री जनता को सम्बोधित करते हुए बैठे हुए काका कालेलकर आर्यवंश महाथेरा आदि

गोरक्षा आदोलन मे भाग लेने वाली गोभक्त जनता, सन्तजन एव मुनि जी

अणुव्रत आन्दोलन मैत्री-दिवस समारोह में बोलते हुए मुनिश्री (बैठे हुए) मुनि महेन्द्र कुमार जी, मुनि नगराज जी
राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद और श्रीमती मनमोहिनी सहगल

गोरक्षा आन्दोलन के अवसर पर जगद्गुरु शंकराचार्य शृंगेरी एवं पुरीपीठाधीश्वर के साथ विचार-विनिमय करते हुए मुनि जी

गोरक्षा आन्दोलन के अवसर पर मुनि जी द्वारा किये गये अनशन को खोलने के अवसर पर (दाये मे) मुनि जी शकराचार्य द्वारिकापीठ, जगद्गुरू शकराचार्य बद्रीकाश्रमपीठ [illegible] स्वामी [illegible] आदि सन्तगण

विचारगोष्ठी म श्रीलका के प्रधानमन्त्री श्री भण्डारनायके आयवश महायेरा, केन्द्रीय मन्त्रीगण मुनिजी एव विभिन्न देशो के राजदूत सन् १९५८

सामूहिक संवत्सरी-महोत्सव के अवसर पर आचार्य तुलसी के साथ मुनि जी और श्री सुभाग मुनि जी

तृतीय विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर (दायें से) मुनि जी स्वामी प्रेमानन्द प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री गृहमंत्री श्री गुलजारी लाल नन्दा एवं श्री मोरारजी देसाई आदि

तृतीय विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर (बायें से) मुनि जी श्री सुशील मुनि जी और दिगम्बराचार्य श्री देशभूषण जी महाराज
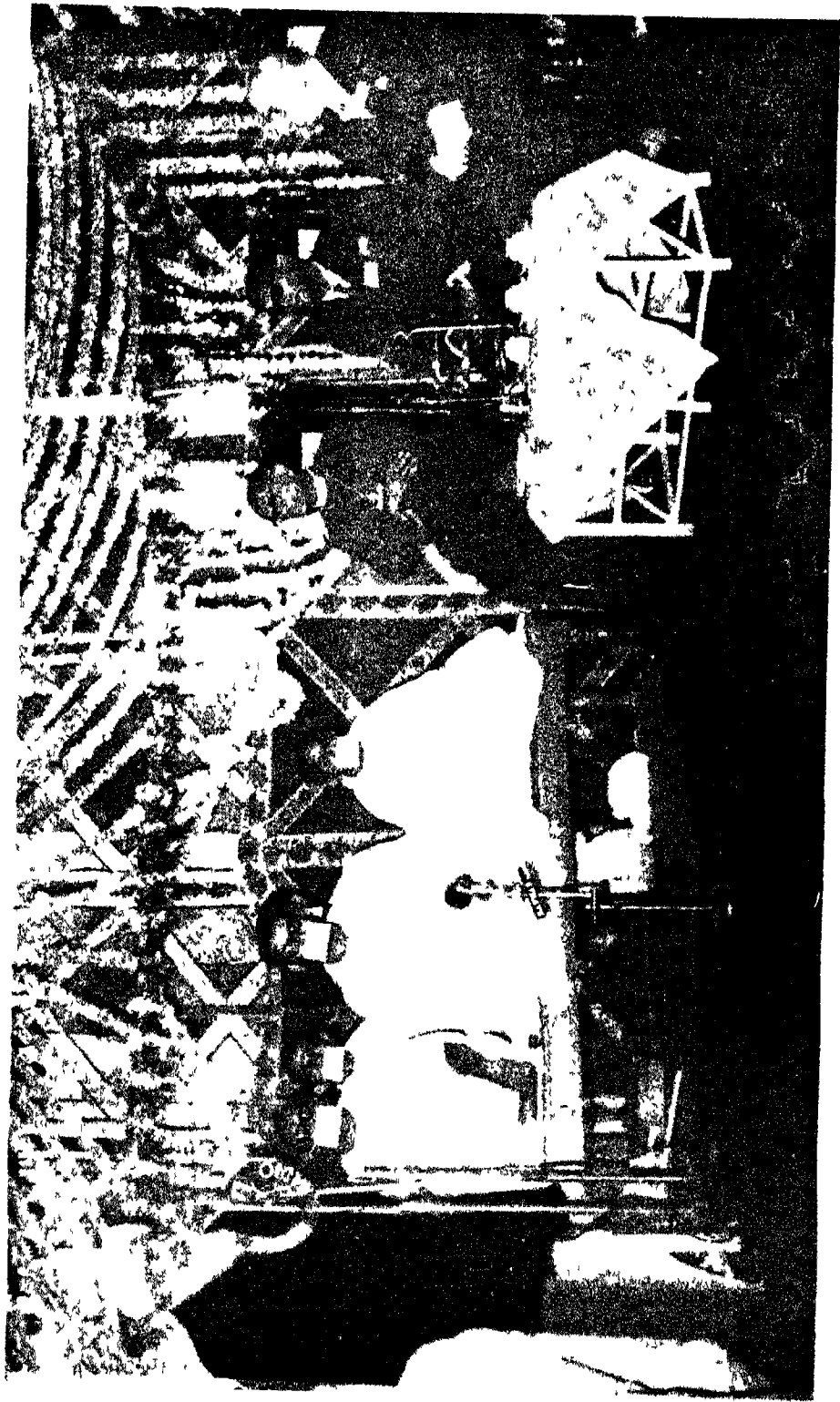
रोमन कैथोलिक धर्मनेताओं के साथ विचार-विनिमय के अवसर पर (बायें से) सन्त कृपाल सिंह जी, श्री विमल मुनिजी, मुनिजी, भण्डारी श्री ज्ञानमुनि तथा इंगलैण्ड, फ्रांस और कनाडा के धर्म प्रतिनिधि

कश्मीर की दुर्गम घाटियों में श्री सुभाग मुनि जी एव मुनि जी
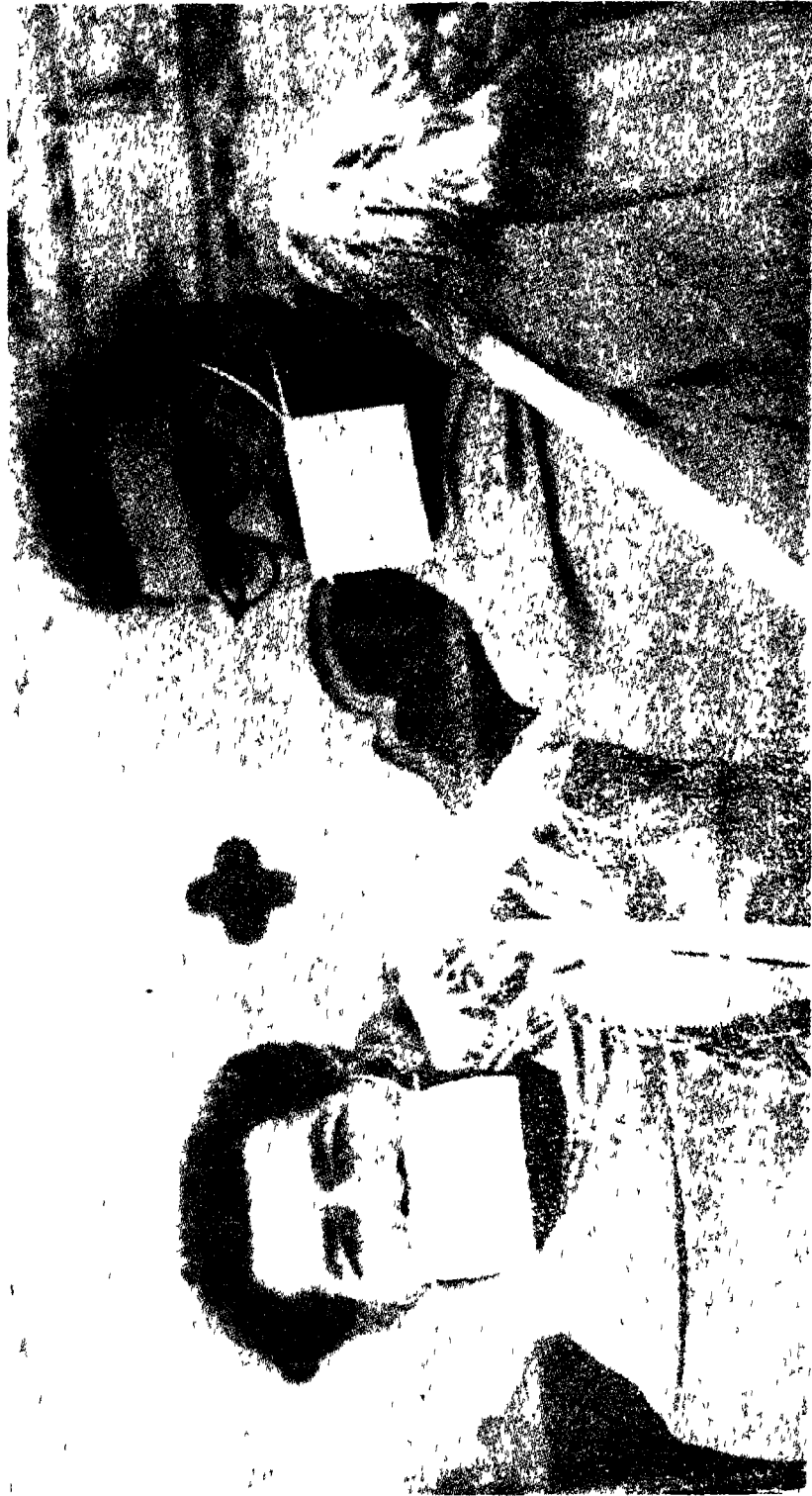
कश्मीर की यात्रा के दो सहयात्री श्री सुभाग मुनि जी एव मुनि जी

कश्मीर धर्म सम्मेलन के अवसर पर (दाएं से) श्री रमाग मुनिजी एवं नन्दुलाल मुनिजी स्वामी गीतानन्द चिनार अफजलबेग मसूदी आजम कश्मीर आदि धर्म नेतागण

कश्मीर के लिए विदाई समारोह के अवसर पर तत्कालीन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन के साथ मुनि जी

मुनि जी से मंत्रणा करते हुए डलमबर्ग सन् १९७०

मुनिजी विश्व धर्म मम्मेलन मे भाग लेने के लिए आये हुए देशी-विदेशी धर्म प्रतिनिधियो के बीच

बैरन ब्लमबर्ग ईसाई जगत् द्वारा मुनि जी को प्रदत्त उपाधि से सम्मानित कर रहे है
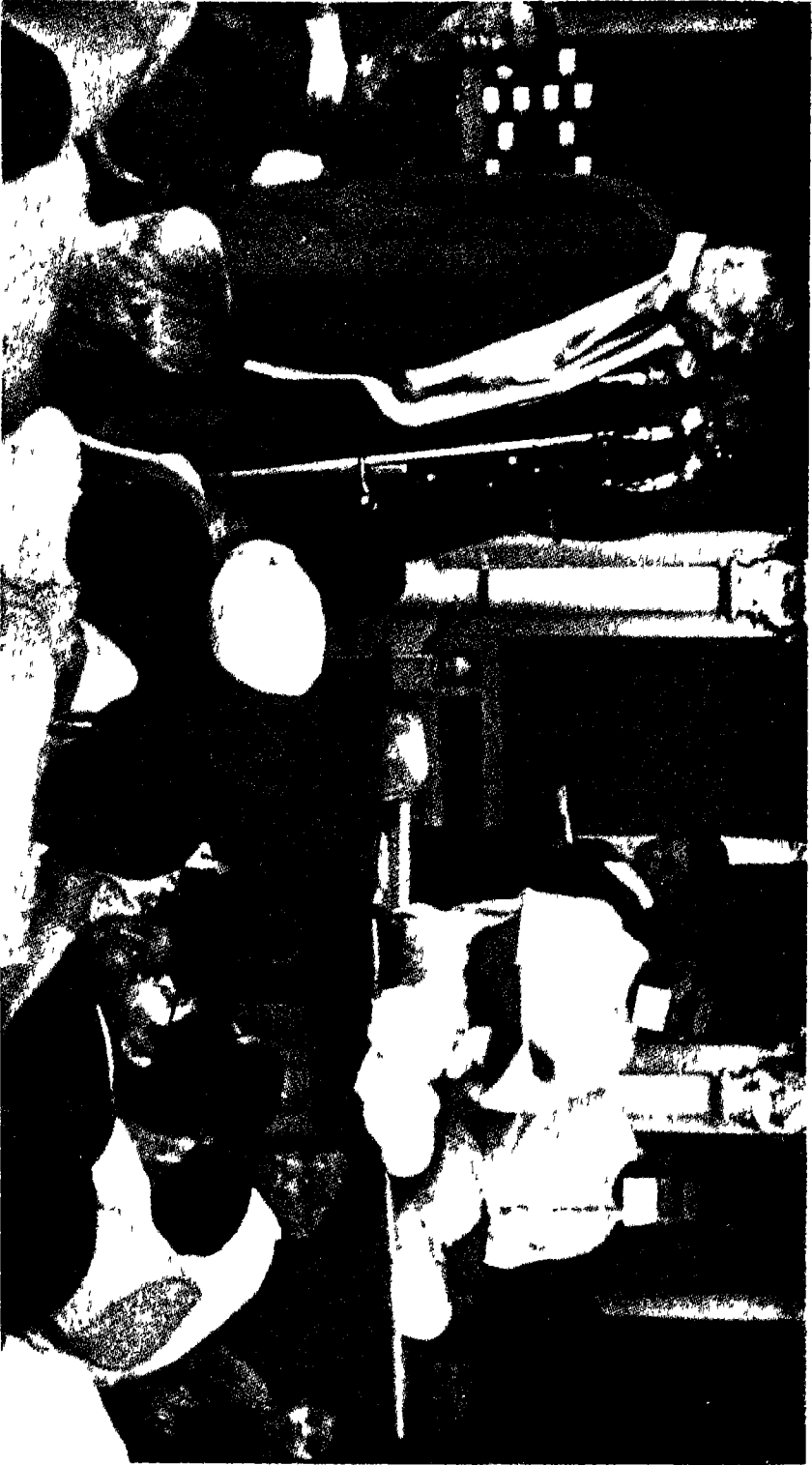
विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर जन समुदाय को उद्बोधित करते हुए मुनि जी

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर जनमत का आह्वान करते हुए मुनि जी साथ मे
उपाध्याय कवि श्री अमर मुनि जी म०

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर सीमांत गांधी खान अब्दुल गफ्फार के साथ मुनि जी

शिकोहपुर (वर्तमान मुर्शीदगढ) अपनी जन्मभूमि मे समारोह के अवसर पर हरियाणा के मन्त्री राव महावीर सिंह श्री कृष्ण चन्द्राचार्य द्रोणाचार्य कालेज के प्राचार्य श्री महेन्द्र कुमार कौशिक एव मुनिजी

अपार जनसमूह को उद्बोधित करते हुए मुनि जी
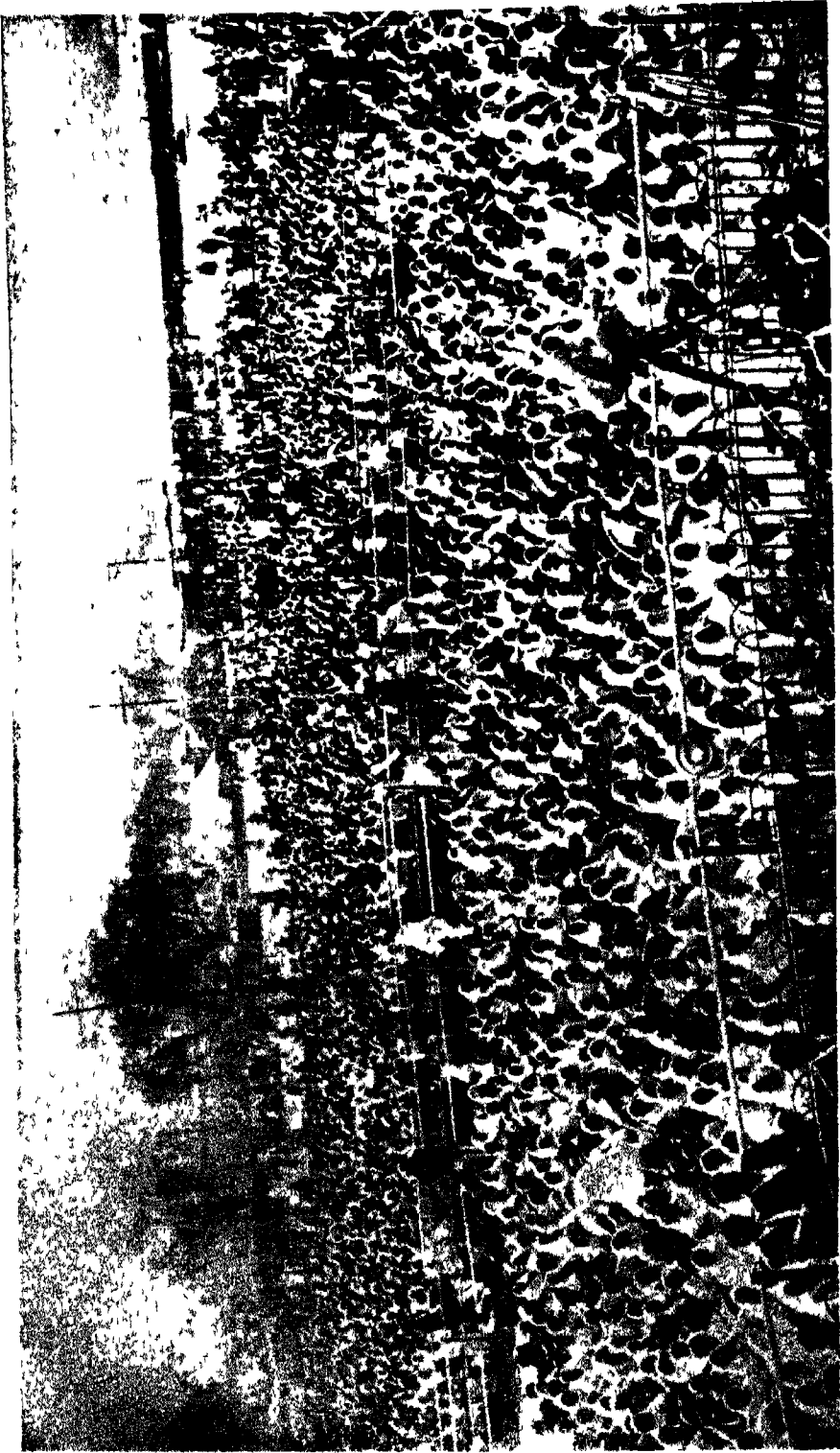
चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन के अवसर पर एकत्रित जनसमूह

चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले देशी एवं विदेशी प्रतिनिधि

मुनिजी से आशीर्वाद ग्रहण करते हुए प्रसिद्ध विधिवेत्ता डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

एक विद्वद्गोष्ठी में (बायें से) डा० बूलचन्द, डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, मुनिजी और श्री सुभाग मुनिजी एवं श्री जगन्नाथ नाहर

राजघाट पर कसाइयों के द्वारा पशुबलि विरोध का संकल्प ग्रहण करने के अवसर पर (बाएं से) स्वीट्जरलैण्ड के धर्मगुरु मुनिजी, लामा कुशिक बकुला, महाबोधि सोसायटी के मन्त्री आर्यवंश तथा अन्य कार्यकर्ता

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन को आशीर्वाद प्रदान करते हुए मुनि जी

तत्कालीन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन मुनि श्री शान्तिप्रिय जी एवं मुनिजी के सान्निध्य में
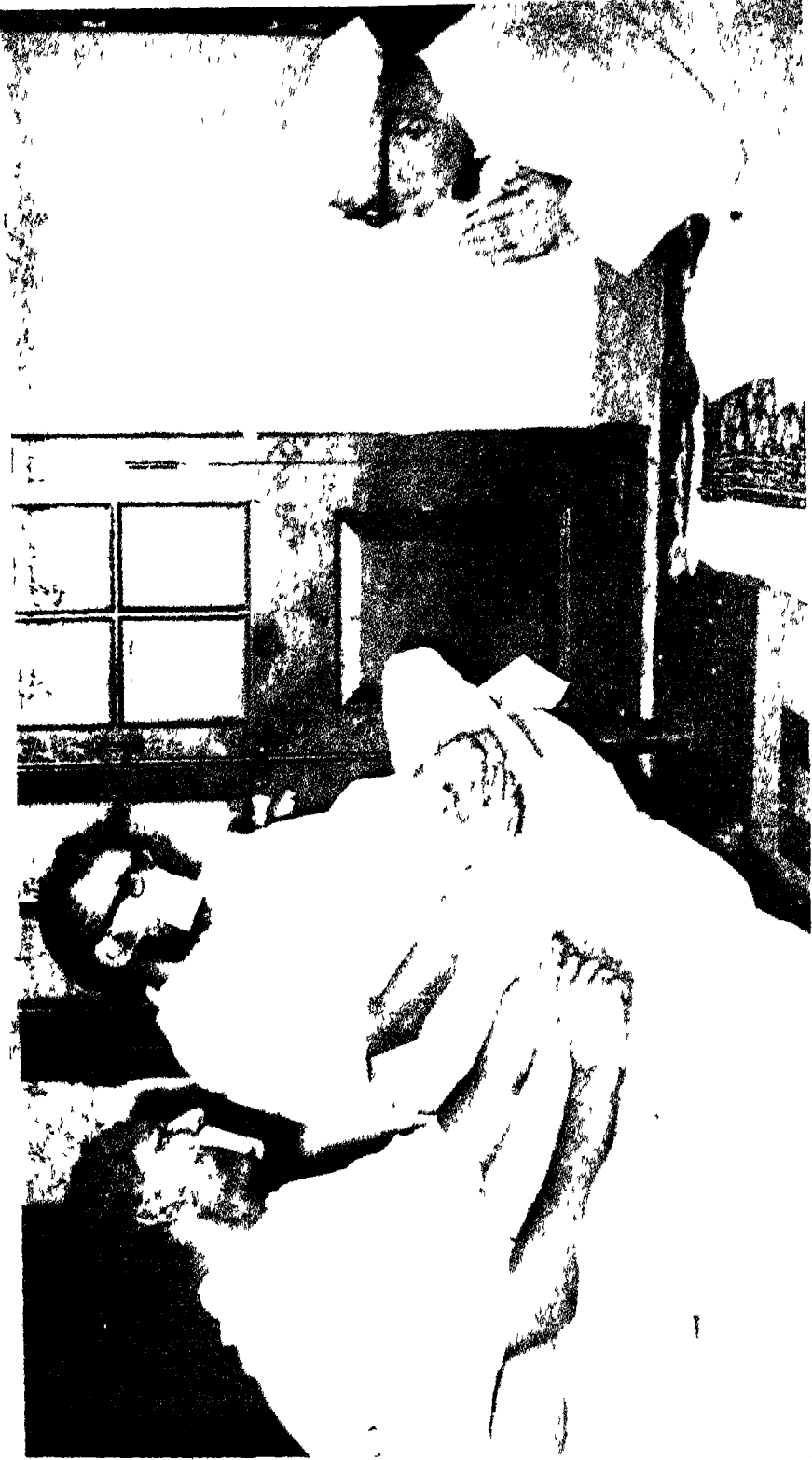
शिकोहपुर (वर्तमान सुशीलगढ़) मे आयोजित जन-जागृति सम्मेलन के अवसर पर (दायें से) डा० के० सी० जैन श्री महेन्द्र प्रकाश कौशिक, पण्डित मनहरा सिंह (मुनि जी के संसारी पिता), राव महावीर सिंह एव मुनि जी की संसारी माता श्रीमती भारती देवी

शिकारपुर जिला गुड़गांव में आयोजित जन जागृति सम्मेलन में उपस्थित अपार जन-समूह

(बायें से) मध्य में मुनि महेन्द्र कुमार एवं मुनि कान्तिसागर के साथ मुनि जी
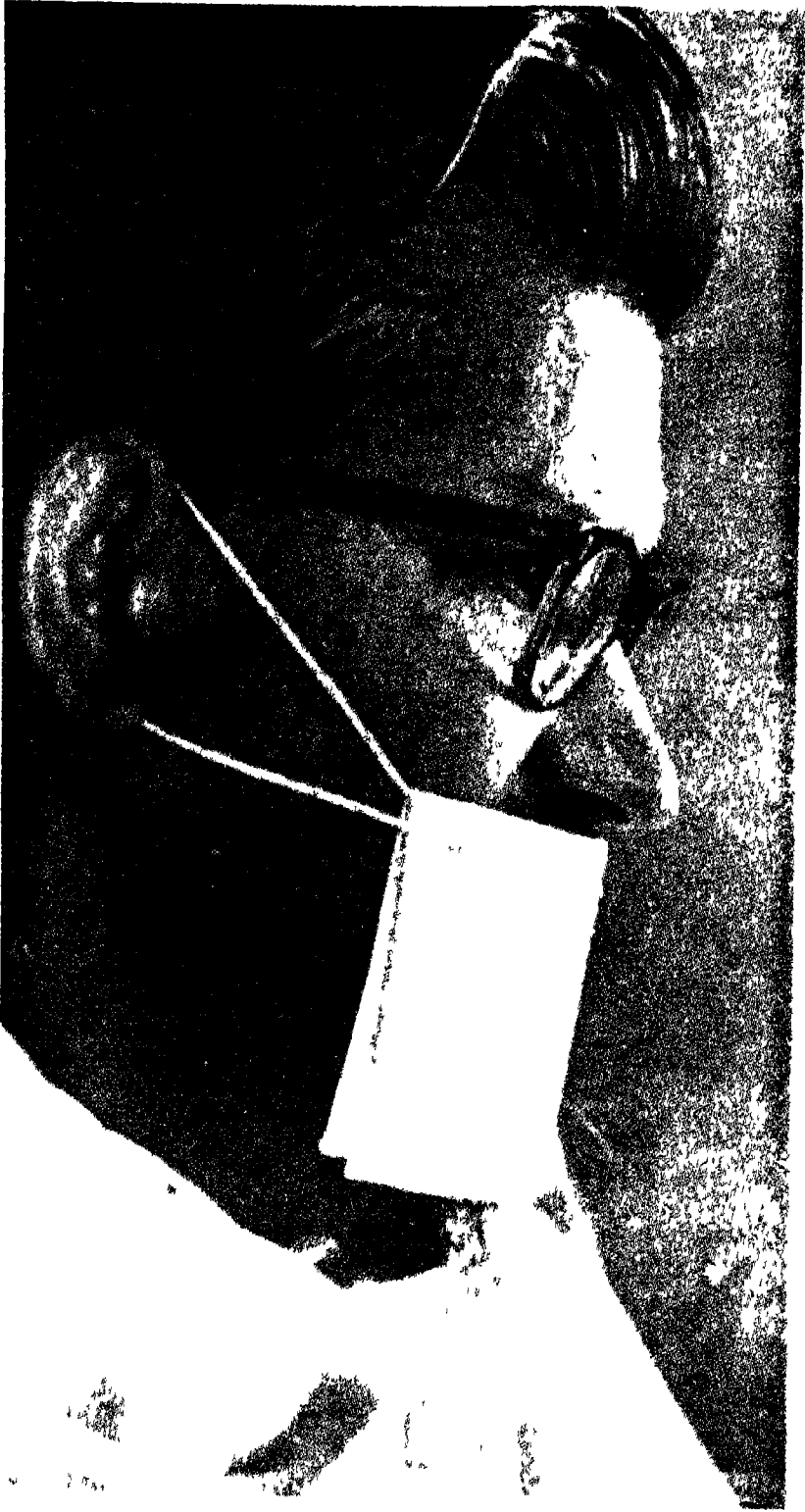
महान् चिन्तक मुनि श्री सुशील कुमार जी

श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ निर्वाण-शताब्दी के कार्यक्रमों की चर्चा करते हुए मुनिजी

भगवान् महावीर निर्वाण-शताब्दी की राष्ट्रीय समिति के गठन के अवसर पर (मंच पर) श्री मोरारजी देसाई श्री अशोक मुनि जी श्री सुभाग मुनि जी
मुनि जी एवं भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी

श्रीमती इन्दिरा गांधी मुनि जी से आशीर्वाद ग्रहण करती हुई

श्री मोरारजी देसाई के साथ भगवान् महावीर निर्वाण-शताब्दी के कार्यक्रमों की चर्चा करते हुए मुनि जी

मुनिजी द्वारा संस्थापित भगवान् महावीर संस्कृत-प्राकृत विद्यापीठ की छात्र-छात्राये
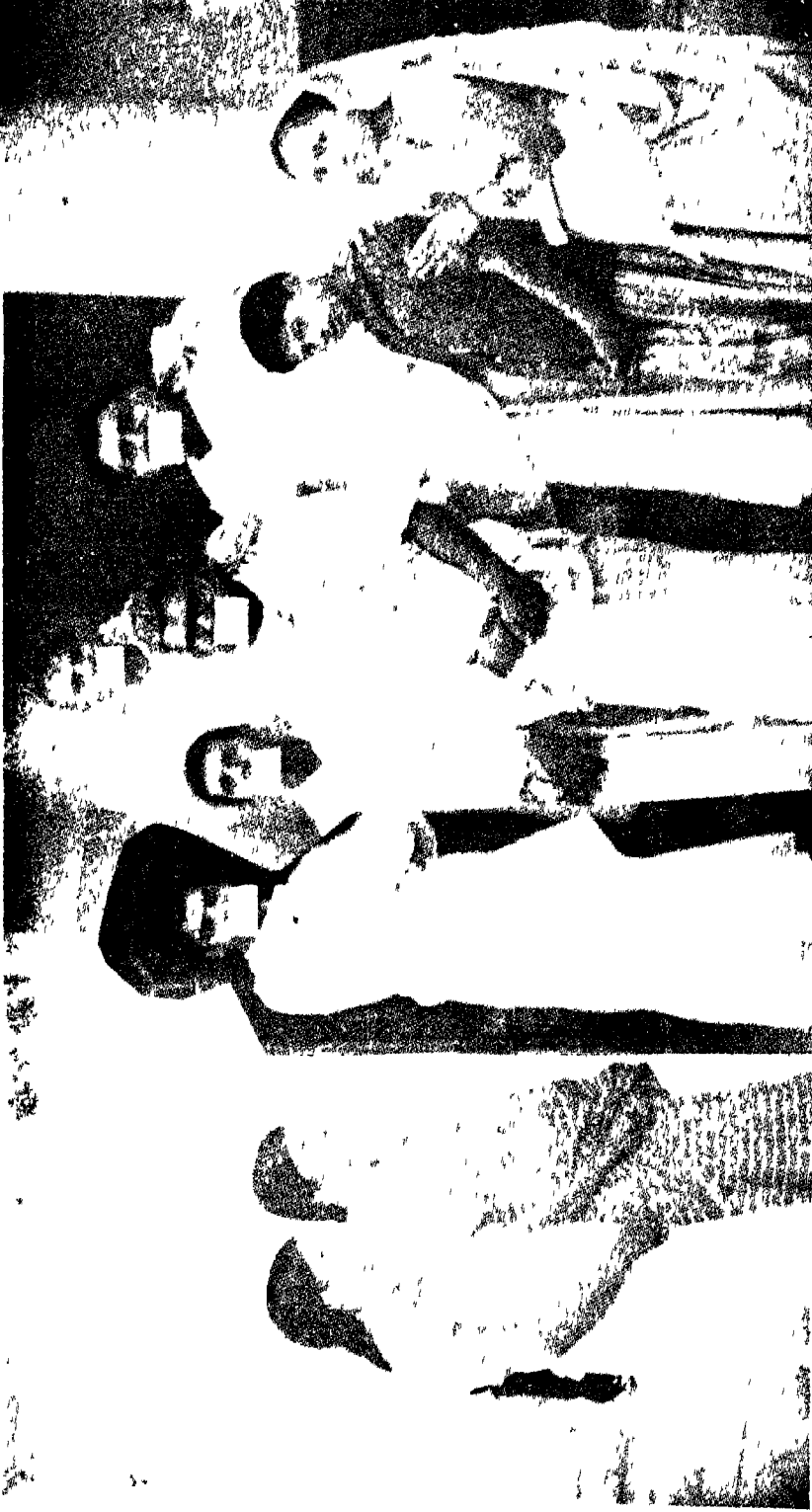
मुनिजी अपने शिष्य-परिवार के साथ
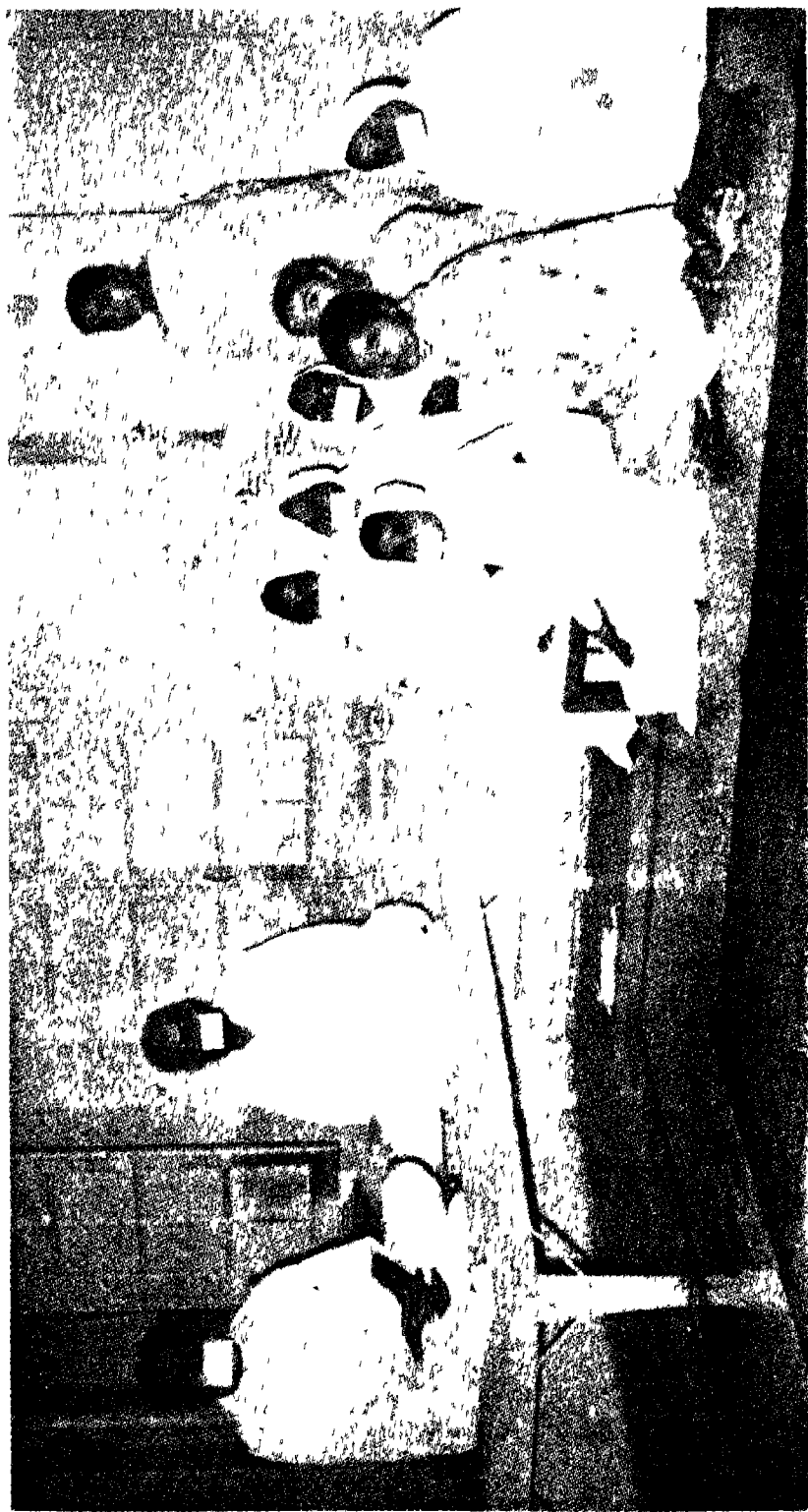
जैन साध्वियो एव जिज्ञासुओ का बोध प्रदान करते हुए श्री सुभाग मुनि जी एव मुनि जी
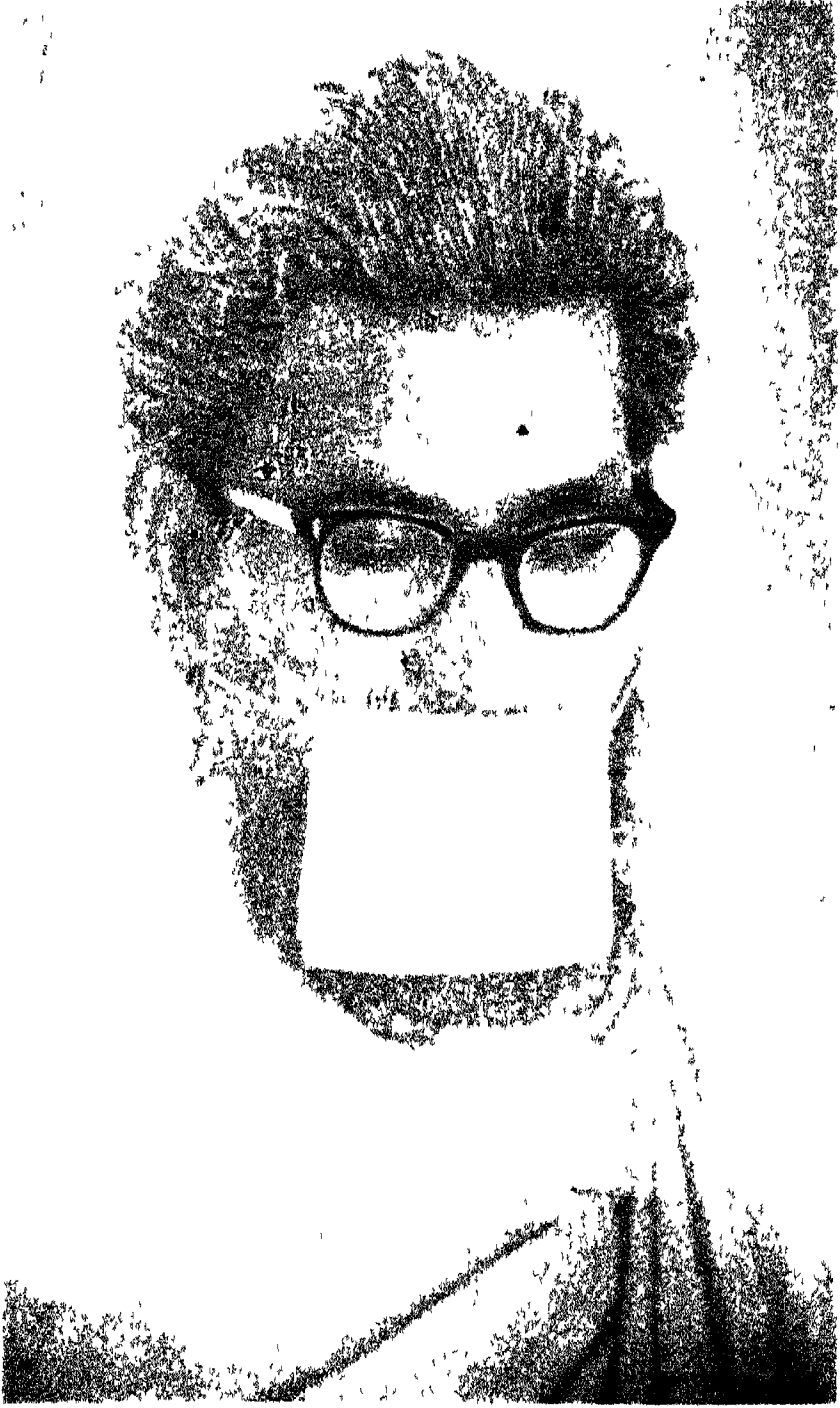
गम्भीर चिन्तन की मुद्रा में मुनि श्री सुशील कुमार जी

मुनिजी के सान्निध्य मे दीक्षार्थी जगन्नाथ विजयेश को तिलक करते हुए विश्व विश्रुत शिक्षा शास्त्री एव वैज्ञानिक डा० दौलतसिंह कोठारी

नवपट्टाभिषिक्त शंकराचार्य श्री स्वरूपानन्द जी सरस्वती के अभिनन्दन के अवसर पर (बायें से) पुरी के शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ द्वारिकापीठाधीश एवं श्री स्वरूपानन्दजी के साथ मुनिजी श्री अमरेन्द्र मुनिजी, श्री सुभाग मुनिजी आदि

श्री महावीर [illegible] के छात्र छात्राओं एवं शिक्षकों का मार्गदर्शन करते हुए मुनिश्री
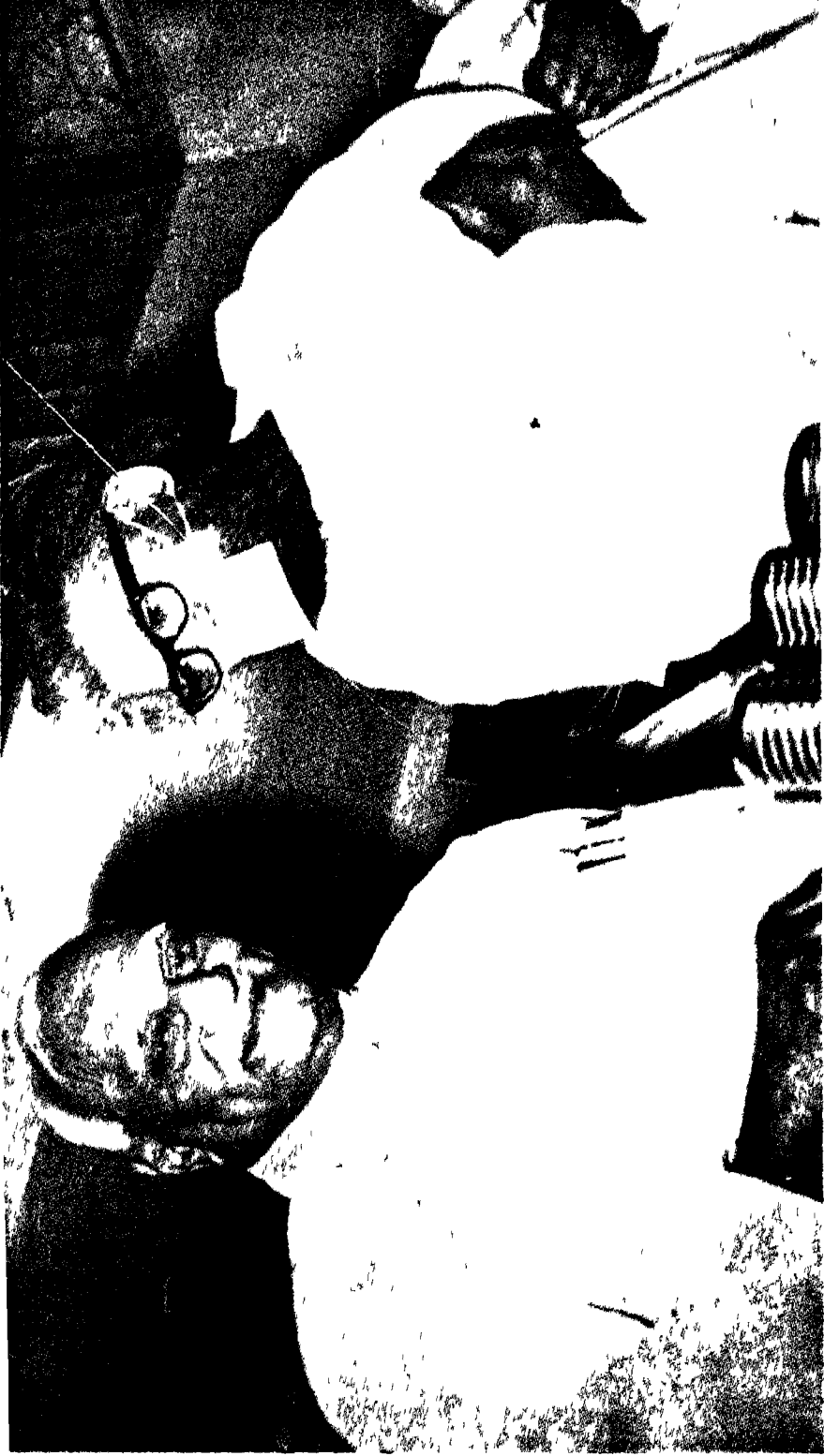
वर्तमान राष्ट्रपति श्री वराह गिरी वेंकट गिरी के साथ विचार-विनिमय करते हुए मुनिजी

अहिंसा भवन में आयोजित महावीर जयन्ती के अवसर पर वर्तमान राष्ट्रपति श्री वराह गिरी वेंकट गिरी के साथ मुनिजी
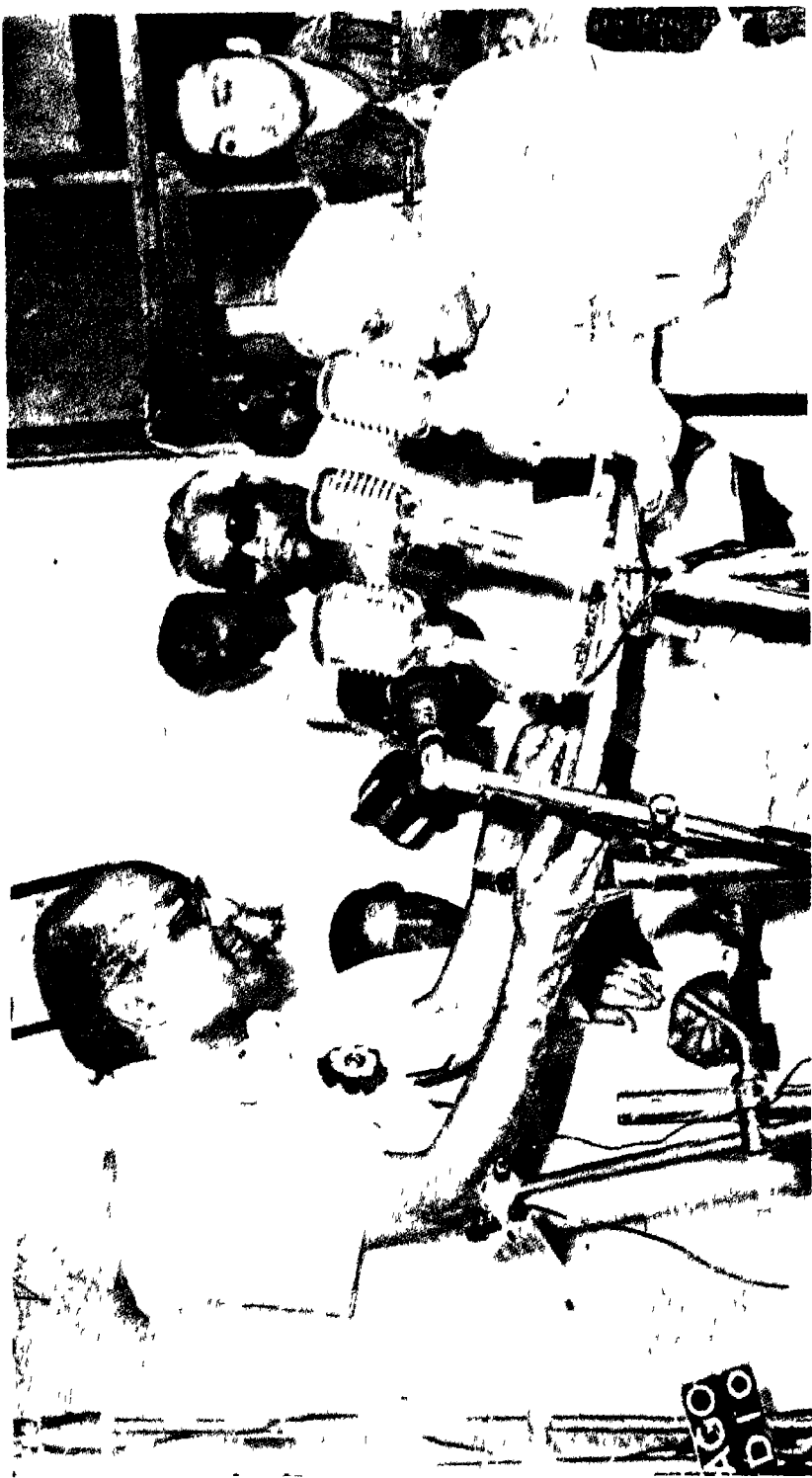
मुनिजी के अनन्य भक्त श्री अरिदमन जैन, राष्ट्रपति श्री वराह् गिरी वेंकट गिरी को नमोक्कार मत्र समर्पित करते हुए

राष्ट्रपति गिरी को आशीर्वाद प्रदान करते हुए मुनिजी

श्री वराह गिरी वेंकट गिरी और श्री जगजीवन राम के बीच मुनिजी

वर्तमान प्रतिरक्षामंत्री श्री जगजीवन राम को आशीर्वाद प्रदान करते हुए मुनिजी

आत्मलीनता के एक क्षण में मुनिजी

उद्बावन की गम्भीर मुद्रा म मुनिजी